अनुक्रम

१ युग-वृत्त और युगीन काव्य-प्रवृत्ति

घनानन्द की कविता को समुचित रूप से समझने के लिए उनके युग की सामान्य पृष्ठभूमि और तत्कालीन काव्य की मुख्य प्रवृत्ति पर संक्षेप में विचार कर लेना आवश्यक है। तभी हम यह जान सकेंगे कि वे अपने युग में कितने ऊपर या नीचे हैं, अर्थात् युगीन धारा में उन्होंने अपने को मिला दिया है या अपनी कोई अलग पहचान बनाई है। युग-संदर्भ में देखें तो घनानन्द रीति काल के अन्तर्गत आते हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास का यह काल सन् १६५० से १८५० ई० तक, लगभग दो सौ वर्षों का माना गया है। राजनीतिक दृष्टि से इस काल के आरम्भ तक मुगल साम्राज्य अपने चरमोत्कर्ष तक पहुँचकर निरंतर ह्रास की ओर उन्मुख हुआ है। शाहजहाँ की बीमारी और उसकी मृत्यु की अफवाह के कारण १६५८ ई० में उसके पुत्रों के मध्य सत्ता के लिए संघर्ष का आरम्भ, इस वैभवशाली शासन के पतन के आरम्भ का भी कारण बना। बड़े भाई दाराशिकोह की हत्या कर औरंगजेब ने शासन की बागडोर संभाली। अपनी धार्मिक असहिष्णुता और कट्टर पंथी नीतियों के कारण वह अधिकांश हिन्दू राजाओं और जागीरदारों का विश्वास खो बैठा। उसका पर्याप्त समय धार्मिक राजनीतिक उपद्रवों के दमन में ही बीता। वह विस्तृत मुगल साम्राज्य को सुव्यवस्थित और सुशासित रखने में असफल रहा। पुत्रों के प्रति अपने कड़े रुख के कारण वह उन्हें योग्य शासक नहीं बना पाया। फलस्वरूप उसके बाद मुगल साम्राज्य लगातार क्षीण होता गया।

औरंगजेब की मृत्यु के बाद १७०७ ई० में उसके पुत्रों के बीच भी सत्ता प्राप्ति के लिए संघर्ष हुआ। उसके दूसरे पुत्र शाहआलम को राजगद्दी मिली, लेकिन वह अधिक समय तक जीवित न रह सका। सन् १७१२ ई० से लगभग ६० ७० वर्षों तक मुगल शासन निरंतर अस्थिरता की ओर बढ़ता गया। यहां तक कि उसका प्रभाव केवल दिल्ली और आगरा तक ही सीमित रह गया। इस बीच जितने भी मुगल शासक आए वे अत्यन्त अल्पकाल के लिए गद्दी पर बैठे। जिन्हें कुछ अधिक समय मिला भी वे शासन को सुव्यवस्थित करने की अपेक्षा विलासिता में ही अधिक डूबे रहे। मजबूत केन्द्रीय सत्ता की पकड़ के अभाव में अनेक हिन्दू और मुसलमान राजाओं, जागीरदारों आदि ने अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया। लेकिन अपनी इस स्वतंत्रता का उपभोग उन्होंने विलासिता में डूबकर किया। अपने विवेच्य कवि घनानन्द का रचनाकाल प्राय यही समय रहा है। एक विलासी शासक मुहम्मदशाह रंगीले के दरबार में भी उन्होंने कुछ समय तक काम

किया था। १७३८ ई० म नादिरशाह के आक्रमण और १७५७ तथा १७६१ ई० के अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों के भी वे प्रत्यक्षदर्शी रहे हैं। घनानंद के सम सामयिक और प्रशसक महात्मा चाचा हित वृदावनदास ने तत्कालीन अव्यवस्था से खिन्न होकर मुहम्मदशाह और उसके अमीर उमरावों के विषय म लिखा था

> वेस्या मद्यपान करि छकि गए अमीर जेत
> रजतम की धार वाढी बूढ़ मा बिलोकिये।
> दिल्ली भई बिल्ली कटला कुत्ता दधि हरी
> भूल्यौ मुहम्मदसाह पहिले ... व काह ढोकिये।
> बाबर हिमायु का चलाऊ अब वश भयौ
> ताको अब फल्यौ सात परता करम ठोकिये॥
>
> —घनआनंद ग्रंथावली पृ० ६० ११

इससे स्पष्ट है कि मुहम्मदशाह के समय तक मुगल वश और उसका शासन पतन की इस सीमा तक पहुँच चुका था कि वह लुटेरे आक्रमणकारियों से भी प्रजा की रक्षा म पूरी तरह असमर्थ था। राजनीतिक दृष्टि से पूरे रीतिकाल म प्रायः यही स्थिति मिलती है।

एक बार मुगल शासन की पूर्ण प्रतिष्ठा के बाद हिंदू राजाओं को अपनी खोई हुई शक्ति फिर से प्राप्त करने की इच्छा या आकांक्षा शेष नहीं रह गई थी। शिवाजी आदि कुछ इने गिने राजाओं ने तथा आगे चलकर मराठा पेशवाओं के साथ मिलकर बुंदेलों ने इस ओर प्रयास अवश्य किया लेकिन इन्हें भी कोई विशेष सफलता नहीं मिली। इसके अतिरिक्त अन्य राजे और सामंतगण प्रायः हाथ पर हाथ रखे बैठे ही रहे। ऐसी निराशा और पराजय की मनोदशा म उन्होंने अपने उपलब्ध साधनों का उपयोग राग रंग और विलासिता म मग्न होने के लिए किया। विलासिता के अन्य अनेक उपकरणों के साथ ही उन्होंने कला की अन्यान्य विधाओं—नृत्य संगीत, चित्र, काव्य आदि को भी अपने मनोरंजन का साधन बनाया। उनकी शान शौकत और प्रतिष्ठा के लिए जिस प्रकार नर्तकी वेश्याएँ गायक चित्रकार आदि राजदरबार के आवश्यक अंग हुए, ठीक उसी प्रकार कवि भी। फलस्वरूप इस काल म बडी तेजी के साथ कवि वर्ग राज्याश्रयों की ओर उन्मुख हुआ। रीतिकाल के प्रायः सभी कवि राजकवि बने। राजसभा म बडप्पन की प्राप्ति ही उनके लिए परम उद्देश्य बन गया। इस ह्रासोन्मुख राजनीतिक सामाजिक वातावरण म राजदरबार विलासिता के प्रमुख अड्डे बन गए। सेना सुरक्षा, प्रशासन के उपकरणों से हीन इन राजदरबारों म शृंगारिकता के लिए खुला अवकाश था। फलस्वरूप इस काल के काव्य म भी शृंगार का ही प्रमुखता मिली।

समूचा साहित्य रीति प्रधान हो गया ।

हमारे विवेच्य कवि घनानन्द भी इसी युग की देन थे। अपने युग के सामाजिक विधि निषेधो के प्रति विद्रोह के साथ ही इन्होने काव्यगत रीतियो का भी किंचित विरोध अवश्य किया। लेकिन सामती मानवी सामाजिक सम्बन्धो की रुढिबद्ध नैतिकता से ये अपने को पूरी तरह मुक्त नही कर पाए। युगीन प्रवृत्ति के प्रभाव वश इन्होने भी शृगार को ही अपने काव्य का विषय बनाया। युग की सीमाओ से किंचित बँधकर भी घनानन्द ने शृगार के रीतिबद्ध स्वरूप की रीतिबद्ध ढग से अभिव्यक्ति नही की है। अपने स्वच्छन्द व्यक्तित्व और निजी परिवेश के कारण इनमे तत्कालीन सामाजिक एव काव्यगत रीतियो से मुक्ति का प्रयास दिखाई देता है। इसलिए इन्हे रीतिमुक्त कवि की सज्ञा दी गई है।

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने रीतिकाल के शृगारिक कवियो को, उनकी रचना प्रकृति के आधार पर तीन वर्गों मे विभक्त किया है—१ रीतिबद्ध, २ रीति सिद्ध और ३ रीति मुक्त। इनमे पहले वर्ग के अन्तर्गत चिन्तामणि, भिखारी दास, देव, मतिराम, पद्माकर आदि अधिकाश रीतिकालीन कवि आते हैं। ये सभी पूर्णत रीतिबद्ध कवि है। इन्होने काव्यशास्त्र की बधी बँधाई परिपाटी पर केवल काव्य रचना ही नही की है, वरन शास्त्र स्थिति सम्पादन का भी प्रयास किया है। अत इन्हे रीतिबद्ध के साथ ही लक्षणकार या लक्षणबद्ध रचनाकार की भी सज्ञा दी जा सकती है। दूसरे वर्ग के कवि भी एक प्रकार से रीतिबद्ध ही है लेकिन उन्होने लक्षण ग्रथ न लिखकर केवल लक्ष्य ग्रथ ही लिखा है। इसके अन्तर्गत बिहारी, रसनिधि आदि कवि आते हैं। कवियो की दृष्टि से इस प्रकार के रचनाकारो का एक अलग वर्ग नही बन पाता। हा रचनाओ की दृष्टि से रीतिकाल मे लिखी गई सभी सतसइया इस श्रेणी मे आ जाती हैं। इस प्रकार की रचनाएँ अपने बाह्याकार मे तो रीति निरूपक नही लगती, लेकिन बनावट बुनावट के साथ ही इनकी मूलचेतना तत्कालीन काव्य-रीतियो से ही निर्मित है। इसीलिए इनके रचयिताओ को रीति सिद्ध कवि कहा गया है।

तीसरे वर्ग के अन्तर्गत रीतिमुक्त कवि आते है, जिनमे घनानन्द आलम, बोधा, ठाकुर, द्विजदेव आदि का नाम उल्लेखनीय है। इन कवियो ने रस, अलकार नायिका भेद, नख शिख वर्णन की बँधी बँधाई परिपाटी का परित्याग कर मुक्त भाव से शृगार काव्य रचा है। इन्होने भाव एव शिल्प दोनो ही क्षेत्रो मे रीति के बाह्य बधनो को केवल अस्वीकार ही नही किया है वरन स्थान स्थान पर उसका विरोध भी किया है। इस सम्बन्ध मे रीतिमुक्त ठाकुर का स्पष्ट कहना है

सीखि लीनो मीन मृग खजन कमल नैन,
सीखि लीनो जस औ प्रताप को कहानो है।

सीखि लीनो कल्पवक्ष कामधेनु चिंतामनि,
सीखि लीनो मेर औ कुबेर गिरि आनो है
'ठाकुर' कहत याकी बडी है कठिन बात,
याको नहिं भूलि कहूँ बाधियत बानो है।
डेल सो बनाय आय मेलत सभा के बीच,
लोगन कवित्त कीबो खेल करि जानो है ॥

इस कवित्त म ठाकुर ने रीतिबद्ध कवियो की रचना प्रकृति का ही उदघाटन नही किया है, वरन् उनकी रूढिवादी मनोवत्ति का भी उपहास किया है। रीतिबद्ध कवियो न कवि वणन परिपाटी म गिनाई गइ बाता का सीखकर काव्य-रचना की थी। इसलिए उनका का य काव्य शास्त्र के चौखट म आबद्ध हा गया। कवि शिक्षा ग्रहण कर लाग कवि बनन लगे थे और उन्ह राजसभा म आदर भी मिलने लगा था। इस प्रकार कवि कम 'खेल' या क्रीडा कौशल की तरह अभ्यास सिद्ध काय बन गया था। फलस्वरूप अन्त प्रेरणा और आत्मानुभूति के समावेश के लिए उसम बहुत कम अवकाश रह गया था। रीतिबद्ध कवियो की इस मनोवत्ति पर कटाक्ष करत हुए घनानन्द न लिखा है

याँ घनआनद छावत भावत जान सजीवन आर तें आवत।
लाग हैं लागि कबित्त बनावत मोहिं तो मेरे कवित्त बनावत ॥
—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृ० ७५/२२८

इस सवये म घनान द न स्पष्ट शब्दा म यह घोषित किया है कि 'लोग अर्थात् रीति कवि लगकर, जोड तोडकर कविता बनाते हैं, किन्तु मैंने अपनी कविता का नही, वरन मेरी कविता ने ही मेरा निर्माण किया है। तात्पय यह कि घनानन्द का काव्य उनकी जीवनानुभूति का सहज स्वच्छन्द प्रकाशन है। उसका मूल स्रोत सुजान और उनका अपना पारस्परिक सम्बन्ध है। वस्तुत घनानन्द ने अपन काव्य मे आदि से अत तक अपने और सुजान के सम्बन्धा को ही दुहराया है। इसलिए वे अपन युग के अधिकाश कवियो से अलग दिखाई दते ह। इस तथ्य को लक्ष्य कर घनानन्द के प्रशस्तिकार व्रजनाथ न लिखा है

जग की कविताई के धोखें रहैं, ह्या प्रवीनन की मति जाति जकी।
समझै कविता घनआनँद की, हिय आँखिन नह की पीर तकी ॥

'जग की कविता' से यहा रीतिबद्ध साधारण शृगारिक रचना से तात्पय है, जिससे घनानन्द की कविता को भिन्न बताया गया है। यह भिन्नता हिय आखिन नह की पीर तकी' के माध्यम से व्यजित हुई है। इसका अभिप्राय है कि घनानन्द की कविता को वही समझ सकता है, जो हृदय की आखो स प्रेम की पीडा को

देखने की सामर्थ्य रखता हो। 'हृदय की आँखा' का तात्पर्य है आत्मानुभव। यहाँ ब्रजनाथ ने आत्मानुभूति के तत्व के आधार पर घनानन्द को अपने युग के अन्य कवियों से पृथक सिद्ध किया है। लेकिन यह भिन्नता केवल आत्मानुभूति के स्तर तक ही सीमित न रहकर भाव विधायक कल्पना, भाषा एवं शिल्प की योजना में भी आसानी से देखी जा सकती है। घनानन्द के अपने निजी अनुभव जगत को समझने के लिए हम उनके जीवन वृत्त की ओर दृष्टिपात करना पड़ेगा।

२ जीवन-वृत्त एवं रचनाएँ

घनानन्द, आनन्दघन और आनन्द को लेकर हिन्दी साहित्य के इतिहास में पर्याप्त विवाद रहा है। इस तीनों नामों से सम्बद्ध रचनाओं और तथ्यों को देखने से पता चलता है कि इस नाम के एकाधिक व्यक्ति हुए हैं। हम इस विवाद में न पडकर अपने विवेच्य कवि की प्रामाणिक रचनाओं को ही अध्ययन का आधार बनाना है। हमारे लिए यह भी आवश्यक नहीं है कि कवि के प्रामाणिक जीवन वृत्त—जन्म तिथि, जन्म स्थान आदि के सम्बन्ध में माथा पच्ची करें। फिर भी किसी कवि या रचयिता की रचना को समुचित रूप से समझने के लिए उसके जीवन की प्रमुख घटनाओं की जानकारी कभी-कभी बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है। घनानन्द रीतिकाल के अन्तर्गत ऐसे कवि हुए हैं, जिनका जीवन उनके काव्य से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। यहां सक्षेप में उनके जीवन पर केवल इस दृष्टि से विचार किया जाएगा, जिससे कि उनकी काव्य-प्रेरणा के मूल स्रोतों को पहचाना जा सके।

अन्य अधिकांश रीतिकालीन कवियों की भांति अपने जीवन के आरम्भ में घनानन्द का सम्बन्ध भी राजदरबार से था। वे एक विलासी मुगल सम्राट, मुहम्मदशाह 'रंगीले' के दरबार में रहते थे—एक कवि के रूप में नहीं वरन एक प्रतिष्ठित कर्मचारी के रूप में। वे मीर मुंशी थे या वजीर—इस सबंध में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। लेकिन इतना तो स्पष्ट है कि राजदरबार में उनकी पर्याप्त प्रतिष्ठा थी। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण अन्य दरबारियों की उनके प्रति ईर्ष्या से मिलता है। राजदरबार में रहते हुए वे अपनी कवित्व शक्ति के लिए नहीं, वरन् गायन कला में निपुणता के लिए प्रसिद्ध थे। दरबार की एक सुजान नामक प्रतिष्ठित वेश्या से इनका प्रेम था। सुजान अपने रूप और गुण के कारण बादशाह के भी पर्याप्त निकट थी। बादशाह की कृपा और सुजान के प्रेम के कारण अन्य दरबारियों की ईर्ष्या ने द्वेष का रूप धारण कर लिया। उन सब के सम्मिलित कुचक्र के कारण घनानन्द को राजदरबार से निष्कासित होना पडा।

राजदरबार से घनानन्द के निष्कासन के विषय में एक किंवदंती प्रचलित है। षडयन्त्र की भावना से प्रेरित दरबारियों ने बादशाह को बताया कि घनानन्द गाते बहुत अच्छा है। उन्हें यह अच्छी तरह मालूम था कि ये अपनी कला को दरबारी नहीं बनाना चाहते। अतः बादशाह के अनुरोध पर भी घनानन्द ने गाया नहीं। जब दरबारियों ने बताया कि सुजान के कहने पर ये अवश्य गाएँगे

तो उसे भी दरबार म बुलाया गया। उनके अनुरोध पर घनानन्द न इतना तन्मय होकर गाया कि व राजदरबार मे सामान्य शिष्टाचार को भी भूल गए। जिस समय उनका गाना समाप्त हुआ, उस समय उनका मुख सुजान की ओर और पीठ बादशाह की ओर थी। इस अशिष्टता के कारण दरबारियो का षडयत्र सफल हुआ। फलस्वरूप इन्ह राजदरबार से निकाल दिया गया। दरबार स चलत समय घनानन्द न सुजान से भी साथ चलन को कहा, लेकिन उसने साफ इनकार कर दिया। इससे उनके मन को गहरी ठेस लगी। काफी समय तक इधर-उधर भटकते हुए ये सुजान के विरह म विह्वल भाव से काव्य रचना करते रहे। 'सुजान हित' इस काल की इनकी महत्वपूण रचना है। अत म लौकिक प्रेम स विरक्त होकर ये वृन्दावन चले गए और वहाँ निम्बार्क सम्प्रदाय म दीक्षित होकर सखी भाव के उपासक बन गए। किंवदन्तियो के अनुसार ये नादिरशाह के आक्रमण (१७३८ ई०) म मारे गए। लकिन आचाय विश्वनाथ प्रसाद मिश्र न विस्तार से यह सिद्ध किया है कि इनकी मत्यु अहमदशाह अब्दाली के दूसरे आक्रमण (१७६१ ई०) म मथुरा म हुई। उन्ही के अनुसार घनानन्द की जन्म तिथि १६७३ ७४ के आस पास रही होगी। इस तिथि का इनके जीवन स सम्बद्ध अन्य तथ्यो के प्रकाश म १० १५ वष आगे पीछे ले जाया जा सकता है।

उपयुक्त विवरण स कई तथ्य हमार सामन उद्घाटित होते हैं। पहला तो यह कि घनानन्द लौकिक प्रेम म दीक्षित होकर भगवत प्रेम की ओर उन्मुख हुए थे। दूसरा यह कि लौकिक प्रेम पात्र सुजान ही इनके काव्य की मूल प्रेरक शक्ति रही है। तीसरा यह कि इन्ह जीवन म एकतरफा प्रेम मिला था, जो इनके काव्य म सवत्र देखा जा सकता है। चौथा यह कि अपने जीवन के आरभ म ये एक अच्छे गायक थे, लकिन सुजान के वियोग के बाद काव्य रचना की ओर प्रवत्त हुए। फलस्वरूप इनके सयोग चित्रण म भी वियोग की एक काली छाया मँडराती हुई दिखाई देती है। पाँचवा यह कि हिन्दू कायस्थ जाति के होते हुए भी इन्होने मुसलमान वेश्या से प्रम कर अपनी स्वच्छन्द प्रवृत्ति का परिचय दिया था। छठा यह कि सामाजिक विधि निषेधो का उल्लघन इन्ह काव्य रीतियो के उल्लघन की ओर उन्मुख करता है।

यहाँ यह विशष रूप से ध्यान देने की बात है कि घनानन्द अपने समय के पर्याप्त विवादास्पद व्यक्ति रहे है। जहाँ एक ओर ब्रजनाथ, हितवृन्दावन दास आदि जैसे बहुत सारे उनके प्रशसक रहे है वहीं दूसरी ओर उनके निन्दक भी रहे हैं। राजदरबार म दरबारियो की ईर्ष्या और बादशाह के कोपभाजन बनने से लेकर उनके कवि एव भक्त जीवन म भी तरह-तरह के आक्षेप किए गए हैं। निन्दा की दष्टि से घनानन्द से सम्बद्ध एक अज्ञातनामा कवि का भडौवा मिला है जो लगभग १७८५ ई० के 'रस कवित्त' नामक सग्रह म सकलित है। इसम

घनान द के वायस्थ होन के साय ही उनके ब्रज म आने और स्थिर अपयश धारण करने का अत्यन्त निन्दापूण वणन मिलता है। इसके माध्यम से घनान द के जीवन से सम्बद्ध बहुत स तथ्या की भी पुष्टि होती है। इसके कुछ उदाहरण दशनीय ह

१ 'कबहूँक खुजावत मैं छुनती तिहि आनद को तब हौं सरतो।

वह ईस कहूँ धनआनद को जो सुजान इजार की जू करतो।।'

२ 'करै गुरनिन्दा वह हुरकनो को बदा महा
निरघिनी गदा खात पानीर औ नान है।
बैन का चुराव ताको मजमून लाव कूर
वनिता बनावे गावै रिजौली सी तान है।

पाप को भवन कर अगम गमन ऐसो
मुडिया अनन्दघन जानत जहान है।।'

३ 'डफरी बजाव डोम ढाढी सम गावै, काहू
तुरक रिझाव तब पावै झूठो नाम है।
हुरक्नि सुजान तुरक्नि को सेवक है
तजि रामनाम वाकौं पूज काम धाम है

पीवै भगकुण्डा सग राख गुडा
भसुण्डा आनदघन मुण्डा सरनाम है।'

४ 'मुदित अनन्दघन कहत विधाता सों यो
याल को आसन दीजो गारी मोहि गावगी।
मो मुख को पीकदान करियो सुजान प्यारी
हुरक्नि तुरक्नि थुक्कै सुख पावगी।
धानी का इजार दुपटी को पेसवाज और
देहुगे रुमाल ताकी पूछना बनावगी।
पगिया पायदान कीजियै गरीब निवाज
भरि गएँ मोमन पलिग पर आवगी।।'

—घनआन द, ग्रथावली, भूमिका पृष्ठ ६६ ६७

इस भडौने के रचयिता न घनान द की निन्दा के बहाने बहुत से प्रामाणिक तथ्य हमारे सामन उपस्थित कर दिए है। सुजान नामक मुसलमान वेश्या स प्रेम किसी मुसलमान का दरबारी होना दूसरा की वाणी चुराकर कविता बनाना और उसे गाना, ब्रजभूमि म कही बाहर से आकर भक्त बनना आदि घनान द से

सम्बद्ध किंवदंतियों को ये छंद पूरी तरह प्रामाणिक सिद्ध करते हैं। व जिस प्रकार राजदरबार की प्रतिष्ठा से दरबारियों के द्वेष व भाजन बन, ठीक उसी प्रकार अपनी कवित्व शक्ति और प्रगाढ भक्ति भावना के कारण अपन प्रतिद्वंद्वियों की ईर्ष्या के भी पात्र बने थे।

निन्दकों और ईर्ष्यालुओं के साथ ही घनानन्द के प्रशंसक भी कम नहीं थे। इनकी काव्य प्रतिभा स चमत्कृत होकर ब्रजनाथ की प्रशंसा इसका स्पष्ट प्रमाण है। घनानन्द के निन्दकों का लक्ष्य करके ब्रजनाथ न अपन रोष को इस प्रकार प्रकट किया है

कोटि विष करि ओट महा, नहि नह की चोटहि जो पहचानै।
बात के गूढ न भेदन जानत, मूढ तऊ हठि बादन ठानै।
चाह प्रवाह अथाह परे नहि, आप ही आप बिचच्छन मानै।
पूछ विषान बिना पसु जो, सु कहा घनआनद बानी बखानै॥

—घनआनन्द कवित्त, पृष्ठ २७४/६

चाचा हित वृन्दावनदास न अपनी 'हरिकला वेलि' (रचनाकाल १७६१ ई०) मे घनानन्द को अत्यंत सम्मान के साथ इस प्रकार स्मरण किया है

आनदघन का ख्याल इक गायौ खुलि गए नैन।
सुनत महा बिह्वल भयौ मन नहि पायौ चैन॥
ऐसे हू हरि संत जन जमननि मारे आइ।
यह अति दुख हियो भयौ लीनौ साच दबाइ॥

—घनआनन्द ग्रन्थावली, भूमिका, पृष्ठ ५६

घनानन्द की निर्मम हत्या के प्रत्यक्षदर्शी इस महात्मा ने उनके शव पर आँसू बहाते हुए शोकातिरेक म विह्वल होकर लिखा है

बिरह सौ तायौ तन निबाह्यौ वन साँचौ पन,
धन्य आनदघन मुख गाई सोई करी है।

गाढौ व्रज उपासी जिन देह अंत पूरी पारी,
रज की अभिलाष सो तहाँ ही देह धरी है।
बृन्दाबन हित रूप तुमहू हरि उडाई धूरि,
ऐ पै साँची निष्ठा जन ही की लखि परी है॥

—घनआनन्द, ग्रन्थावली भूमिका, पृष्ठ ६०

यहाँ वृन्दावन दास ने भक्त कवि के प्रति अपनी सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित की

है। विरह की साक्षात मूर्ति घनानन्द ने अपनी कथनी और करनी, अर्थात अपने जीवन और काव्य म एकात्म्य स्थापित किया था—जिसे 'मुँह गाई सोई करी' है के माध्यम से सवर्तित किया गया है। 'राधाकृष्ण दास' ग्रथावली म एक विवरण आया है। घनानन्द से सम्बद्ध एक किवदन्ती पर आधारित इस विवरण म कहा गया है कि मथुरा म कत्लेआम के समय घनानन्द न सैनिको से कहा था कि मुझ धीर धीर देर तक तलवार की घाव दो। तलवार की घाव के साथ व्रज की धूलि म लेटते हुए इन्होन प्राण-त्याग किया। उपर्युक्त कवित्त के तीसरे वद म इस तथ्य की आर भी सकेत हुआ है। 'एसे हू हरि सत जन मारे जमनन आइ'—के उल्लेख द्वारा ता वृन्दावन दास जी न घनानन्द की मृत्यु के कारण को एकदम निर्विवाद बना दिया है।

अपने व्यक्तित्व की भाति ही घनानद का कृतित्व भी रीतिकालीन अन्य कवियो की अपक्षा अधिक व्यापक और गहरी भावभूमि पर प्रतिष्ठित है। छन्द विधान की दष्टि से भी ये अपन समकालीन कवियो स पयाप्त भिन्न ह। कवित्त, सवया, दोहा, सोरठा, अरत्ल, शोभन त्रिभगी, ताटक, निसानी, सुमेर, घनाक्षरी चौपाई, प्लवग, छप्पय, विष्णुपद आदि विभिन्न छन्दा के साथ ही इन्होन पद शली म राग-रागिनिया पर आधारित बहुत बडी सख्या म गीत भी लिखे है। इनके गीत सूर, तुलसी, कबीर, मीरा आदि के गीता स पर्याप्त भिन्न और शास्त्रीय सगीत की मर्यादा से पूरी तरह मर्यादित है। अधिकाशत चार चार पक्तिया म आबद्ध य गीत ताल और सुर के अदभुत आरोह-अवराह के माध्यम स घनानन्द की सगीत ममनता का प्रामाणित करत हैं। एक विशिष्ट सगीतज्ञ होन के नात इनक परम्परागत छन्दो—विशेपत कवित्त सवयो म भी सगीतात्मकता का सुन्दर विधान मिलता है। घनानन्द ग्रथावली म सकलित रचनाओ का दखन स स्पष्ट पता चलता है कि भाव वविध्य क साथ ही शली वविध्य का भी सुन्दर विधान घनानन्द न किया है। भाषा की दष्टि से य मुख्यत व्रजभाषा के कवि हैं। लकिन पूर्वी हिन्दी, अवधी पजाबी, राजस्थानी आदि के साथ ही अरबी फारसी मिश्रित भाषा के प्रयोग म भी इन्होने अपनी निपुणता का परिचय दिया है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र न 'घनानन्द ग्रथावली' के अन्तगत इनकी निम्नलिखित रचनाओ को स्थान दिया है

१ सुजानहित, २ कृपा कन्द निबध ३ वियोगवलि, ४ इश्कलता, ५ यमुना यश, ६ प्रीतिपावस ७ प्रेमपत्रिका, ८ प्रेम सरोवर, ९ व्रजविलास १० सरस बसत, ११ अनुभव चद्रिका १२ रग बधाई १३ प्रेम-पद्धति १४ वृषभानुपुर सुषमा, १५ गोकुल गीत, १६ नाम माधुरी, १७ गिरि पूजन, १८ विचार सार, १९ दान घटा, २० भावना प्रकाश, २१ कृष्ण कौमुदी, २२ धाम चमत्कार, २३ प्रिया प्रसाद, २४ वृन्दावन मुद्रा २५

व्रज स्वरूप, २६ गोकुल चरित्र, २७ प्रेम पहेली, २८ रसना यश, २९ गोकुल विनोद, ३० व्रज प्रसाद, ३१ मुरलिका माद, ३२ मनोरथ मजरी, ३३ व्रज व्यवहार, ३४ गिरिगाथा, ३५ व्रज वर्णन, ३६ छन्दाष्टक, ३७ त्रिभगी छन्द ३८ कवित्त सग्रह, ३९ स्फुट, ४० पदावली और ४१ परमहस वशावली।

वस्तुत ऊपर गिनायी गई रचनाओ म से अधिकाश स्वतन्त्र रचना न होकर विभिन्न छन्दो म भिन्न भिन्न विषयो के सक्षिप्त वणन हैं। जसे—'प्रेम सरोवर' केवल आठ दोहा म वृन्दावन के एक सुन्दर स्थल की झाकी है। इसी प्रकार 'वियोग वेलि, यमुना यश', 'प्रीतिपावस', 'व्रज विलास', सरस वसत, 'अनुभव चद्रिका, 'रग वधाई 'प्रेम पहेली, रसना यश', छन्दाष्टक, 'त्रिभगी' आदि दो से लेकर छ पृष्ठो तक की अत्यत छोटी रचनाएँ ह। यहा एक बात विशेष रूप से विचारणीय है कि इन सभी रचनाओ को निर्विवाद रूप से घनानन्द द्वारा रचित मान लेना कठिन है। उनके विरक्त होन से पूव की 'सुजानहित' और विरक्ति स बाद की 'पदावली' सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचनाएँ ह जो उनके तीन चौथाई स भी अधिक कृतित्व को समेटे हुए है। छोटी रचनाओ मे 'प्रेम पत्रिका', कृपाकन्द निबध', प्रेम पद्धति आदि को भी निर्विवाद रूप से घनानन्द कृत माना जा सकता है। अत 'घनआनन्द ग्रथावली' म सकलित लगभग ८० प्रतिशत रचनाए निश्चित रूप से प्रामाणिक मानी जा सकती है।

यहा इस तथ्य की ओर भी सकेत कर देना आवश्यक है कि घनानन्द की रचनाओ का सबसे प्राचीन सग्रह घनआनद कवित्त है। इसे उनके समसामयिक एव मित्र व्रजनाथ ने बडे श्रम स तयार किया था। इसम लगभग ५०० कवित्त-सवये रखे गए हैं। 'कृपाकन्द निबध, 'प्रेम पत्रिका, 'दान घटा आदि छोटी रचनाओ के कवित्त सवयो के साथ ही सुजानहित के अधिकाश कवित्त सवये भी इसम आ गए है। आचाय विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का तो यहाँ तक कहना है कि 'घनआनन्द कवित्त' की ही किसी अस्त व्यस्त प्रति के आधार पर 'सुजानहित' सग्रह तयार किया गया है। इस सम्बन्ध मे वास्तविकता चाहे जो हो, लेकिन यह एक स्पष्ट तथ्य है कि 'घनआनद कवित्त' म चौबीस ऐसे कवित्त सवये है जिन्हे घनआनन्द ग्रथावली' की किसी भी रचना म स्थान नही मिला है। अत ग्रथावली के अन्तगत इन्हे 'प्रकीणक' शीर्षक से रखा गया है। अपनी विषय वस्तु, भाव भगिमा भाषा शैली आदि सभी दष्टियो से इन कवित्त सवयों की प्रामाणिकता के सम्बन्ध मे किसी भी प्रकार की आशका की गुजाइश नही है। कृपाकन्द निबध', प्रेमपत्रिका, दान घटा' आदि के कवित्त सवयो का 'घनआनद कवित्त म समावेश कवि के भक्त रूप का भी सकेतक है। इस प्रकार यह सग्रह लौकिक शृगार और भक्ति भावना—दोनो का प्रतिनिधित्व करता है। यदि

ग्रयावली म सगहीत पदावली को इमके साथ मिला लिया जाए ता विवेच्य कवि का समग्र कृतित्व हमार सामने आ जाता है। इसके आधार पर उमके काव्य की अतर्बाह्य सभी विशेपताआ का समुचित आकलन किया जा सकता है। वैसे घनान द की साहित्यिक कीर्ति का प्रमुख स्तम्भ 'सुजानहित' ही है। यह मुख्यत लौकिक शृगार की रचना है, जिसम शृगार के सयाग और वियोग दोना पक्षो का चित्रण है। शेप मभी रचनाएँ किसी न किसी रूप म कवि की भक्ति भावना व्यजित करती है।

३ 'लोग हैं लागि कवित्त बनावत मोहिं तो मेरे कवित्त बनावत'

'घनानन्द और अन्य रीतिमुक्त कवि भी रीतिबद्ध लक्षणकार कवियों की भाँति ही तत्कालीन युग चेतना से जुड़े हुए थे। तत्युगीन ह्रासोन्मुख सामंती समाज के मानवी-सामाजिक संबंधों के अंतर्गत रह कर ही इन कवियों की स्वच्छन्दता और मुक्ति की कल्पना को आकार मिला था। घनानन्द के साथ ही अधिकांश रीतिमुक्त कवियों को राजदरबारों का आश्रय ग्रहण करना पड़ा था। यद्यपि कवि के रूप में घनानन्द ने किसी राजदरबार का आश्रय नहीं ग्रहण किया, फिर भी मुहम्मदशाह के दरबार से सम्बद्ध कर्मचारी होने के नाते जाने अनजाने कुछ दरबारी प्रभाव उन पर अवश्य था। बोधा पन्ना नरेश के आश्रित कवि थे और आलम को बहादुरशाह का आश्रय मिला था। ठाकुर कई राजदरबारों से सम्बद्ध रहे हैं लेकिन किसी प्रलोभन में अपनी स्वच्छन्दता पर उन्होंने कभी आंच नहीं आने दी। कहा जाता है कि एक बार बांदा नरेश हिम्मतबहादुर ने अपने भरे दरबार में ठाकुर को कुछ कटुवचन कह दिया था। इससे क्रुद्ध होकर ठाकुर ने म्यान से तलवार निकाल लिया था और कहा था

> सेवक सिपाही हम उन रजपूतन के,
> दान जुद्ध जुरिबे में नेकु जे न मुरके।
> नीति देनवारे हैं मही के महिपालन को,
> हिय के बिसुद्ध हैं, सनेही साँचे उरके।
> ठाकुर कहत हम बैरी बेवकूफन के
> जालिम दमाद हैं अदानिया ससुर के।
> चोजिन के चोजी महा मौजिन के महाराज,
> हम कविराज हैं पै चाकर चतुर के॥
>
> —आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३६२।

इन सभी रीतिमुक्त कवियों ने युग की प्रमुख काव्य प्रवृत्ति शृंगार को ही अपने काव्य का विषय बनाया। युगीन भावधारा से बंध कर भी ये कवि रीति या परम्परा के अंधानुयायी नहीं बने। जहां इन्होंने आवश्यक समझा वहाँ रूढ़ परम्परा को—चाहे वह सामाजिक हो या काव्य की—यथाशक्ति तोड़ने का प्रयास किया।

कायस्थ घनानन्द ने सुजान नामक मुसलमान वेश्या से प्रेम किया, जिसके लिए उन्हें राजदरबार की नौकरी से हाथ धोना पडा। ब्राह्मण वंश में उत्पन्न बोधा ने सुभान नामक मुसलमान वेश्या को जीवन संगिनी बनाया। ब्राह्मण आलम शेख नामक मुसलमान रँगरेजिन से प्रेम विवाह किया। इस प्रकार इन सभी कवियों ने प्रचलित सामाजिक विधि निषेधों का उल्लंघन करने का साहस दिखाया है। इसके विपरीत चिन्तामणि, भिखारीदास देव, मतिराम, पद्माकर आदि सभी रीतिबद्ध कवियों ने सामाजिक विधि निषेधों के अनुकूल जीवन यापन किया था। उस समय के दरबारी वातावरण में यह संभव ही नहीं था कि सामाजिक आचार विचार की उपेक्षा करके कवि कलाकार या कोई भी व्यक्ति दरबार में रह सके।

यहाँ यह स्मरणीय है कि घनानन्द की स्थिति अपने समशील रीतिमुक्त कवियों से भी पर्याप्त भिन्न थी। बोधा ने अन्ततः सुभान को प्राप्त किया। आलम ने शेख के साथ दाम्पत्य जीवन व्यतीत किया। परन्तु घनानन्द सुजान द्वारा ठुकराए गए। जीवन में इनका प्रेम एकतरफा या विषम सिद्ध हुआ। फलस्वरूप अपने काव्य में भी इन्होंने अनुभयनिष्ठ विषम प्रेम की वेदना को ही विस्तार दिया है। वैसे अन्य रीतिमुक्त कवियों में भी विषम प्रेम की पीडा के दर्शन होते हैं, लेकिन रीतिबद्ध कवियों की भाँति ही इनमें उभयनिष्ठ प्रेम का पर्याप्त चित्रण भी मिलता है। इस प्रकार अपने जीवन की भाँति ही अपने काव्य में भी अन्य सभी रीतिकालीन शृंगारिक कवियों से घनानन्द का पार्थक्य स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

रचना के स्तर पर भी रीतिबद्ध कवियों से घनानन्द का पार्थक्य स्पष्ट है। रीति कवियों में संयोग वर्णन के अन्तर्गत जो तल्लीनता मिलती है, वह वियोग-वर्णन में नहीं। इसके साथ ही पूर्ववर्ती काव्यशास्त्रीय परम्परा के आधार पर विभिन्न अलंकारों, नायिकाओं के लक्षणबद्ध स्वरूप प्रस्तुत करने के कारण उनके काव्य में पर्याप्त कृत्रिमता आ गई है। आत्मानुभूति की अपेक्षा शास्त्र स्थिति सम्पादन को अधिक महत्त्व देने के कारण उनकी काव्य दृष्टि प्रायः बाह्यार्थ निरूपण पर ही अधिक रही है। फलस्वरूप संयोग में बाहरी उछल कूद वियोग में ताप की ऊपरी नाप जोख, अतिरंजित कृशता और सौंदर्य वर्णन में साँचे में ढले-ढलाए प्रभाव शून्य नाना बोधक चित्र ही उनमें अधिक मिलते हैं। बाह्य रीतियों के बंधन से अधिक जकडा होने के कारण रीतिबद्ध कवियों का काव्य हृदय की विभूति न बनकर अभ्यास जन्य क्रीडा-कौशल बन गया है। इसके विपरीत घनानंद का काव्य वियोग प्रधान है। विषम प्रेम के कारण उनकी वेदना में एक विशेष प्रकार की असहाय और कातर पुकार मिलती है। स्वानुभूति के स्तर पर चित्रित होने के कारण यह विषमता अंतर्वृत्ति निरूपण की ओर अधिक उन्मुख है। इसके साथ ही इस वेदना का

केन्द्र कोई नायक नायिका न होकर कवि का आत्म या 'स्व' है, अत इसके आग्रह अनुरोध आत्मनिवेदन के रूप मे पाठक के सम्मुख प्रस्तुत होते हैं। फलस्वरूप घनानन्द के यहाँ कवि के साथ पाठक का सीधा सम्पर्क होता है, जिसका रीतिबद्ध कवियो म पर्याप्त अभाव है।

वियोग की भाँति ही सयोग-वणन म भी रीतिबद्ध कवियो से घनानन्द का पार्थक्य स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। मिलन आदि के प्रसगो म रीतिकवियों की भाँति इनकी दष्टि स्थूल चेष्टाओ और कामोत्तेजक अश्लील विवरणो की ओर नही गई है। इनके सयोग वणन म भी एक विशेष प्रकार की तल्लीनता और गाभीय आद्यन्त बना रहता है। इनका प्रेमी वियोग की भाँति ही सयोग म भी अशात और व्याकुल बना रहता है। इसलिए घनानन्द के सयोग और वियोग दोनो के चित्रण म एक स्वस्थ आचारनिष्ठता का सन्निवश हो गया है, जिसका अधिकाश रीतिबद्ध कवियो म अभाव दिखाई दता है।

काव्यशास्त्रीय व धनो म जकडकर रीतिबद्ध कवियो न प्रेम को भी बहुत कुछ रूढिबद्ध बना दिया है। एक निश्चित प्रकार की नायिका तथा निश्चित अलकार के लक्षणबद्ध स्वरूप के आग्रह के कारण उनके यहाँ प्रेम की तीव्रता ही नही मारी गई है, वरन वह प्राय अस्वाभाविक भी बन गया है। इसके साथ ही नायक नायिका के बीच दूती या सखी के रूप म एक मध्यस्थ के विधान द्वारा रीतिबद्ध कवियो ने प्रेम को एक क्रीडापरक व्यापार की कोटि म ला दिया है। वस्तुत इस प्रकार की मध्यस्थता साम ती समाज के मानवी सामाजिक सम्बन्धो की आचार-व्यवस्था क आग्रह अनुरोधो पर आधारित थी। मानव सम्बन्धो के उस दायरे म केवल प्रेमी ही नही, युवा पति का भी प्रेमिका या पत्नी से घर परिवार या अन्य लोगो के सामन मिलना या बात चीत करना सामाजिक आचार के विरुद्ध था। यह सामाजिक आचार रीति कवियो के काव्य म एक रूढि बनकर आई है। घनानन्द के साथ ही सभी रीतिमुक्त कवियो न इस रूढि का उल्लघन किया है। इनके यहाँ नायक नायिका के मध्य सयोग और वियोग दोनो ही स्थितियो म एक सीधा सम्पर्क है। रीतिमुक्त ठाकुर की नायिका तो दूती को सीधे फटकारते हुए वह उठती है

'ह्वै है नही मुरगा जेहि गाव सखी तेहि गाँव का भोर न ह्वै है।'

अर्थात जहाँ दूती नही होगी, वहाँ क्या प्रिय स मिलन ही नहीं होगा? घनानन्द ने भी अपने काव्य म मध्यस्थ के रूप म सखी या दूती का विधान नही किया है। इन्होंने प्रेम के मध्य दौत्य कम को अस्वाभाविक मानते हुए विरही की विवशता को इस प्रकार प्रस्तुत किया है

पाती मधि छाती छन लिखि न लिखाए जाहिं,
काती लै बिरह घाती कीन जैसे हाल हैं।
आँगुरी बहकि तहीं पाँगुरी किलकि होति,
ताती राती दसनि के जाल ज्वाल माल हैं।

नेह भीजी बातें रसना पै उर-आँच लागें,
जागें घनआनन्द ज्यों पुंजनि मसाल हैं।
—घनआनन्द कवित्त, ४२

विरह वेदना ने हृदय की जो दुर्दशा कर रखी है, उसमें न प्रिय को पत्र लिखा-लिखाया जा सकता है और न ही दूसरे द्वारा कोई संदेश भी भेजा जा सकता है। घनानन्द ने यदि कहीं दौत्य कर्म का उल्लेख किया भी है तो उसे अत्यन्त अस्वाभाविक और अप्रत्याशित रूप में ही

जहा ते पधारे मेरे नननि ही पाँव धारे,
वारे ये विचारे प्रान पैंड पड़ पे मनो।
आतुर न होहु हा हा नेकु फेंट छोरि बैठो,
मोहि वा बिसासी को है ब्यौरो बूझिबो घनो।
हाय निरदई को हमारी सुधि कैसे आई,
कौन विधि दीनी पाती दीन जानिकै भनो।
झूठ की सचाई छाक्यौ त्यौं हित कचाई पाक्यौ
ताके गुन गन घनआनन्द कहा गनो॥'
—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृष्ठ ६६/२६६

यहाँ कवि ने विषम (एकतरफा) प्रेम से उत्पन्न प्रेमी की आशंका, औत्सुक्य, दैन्य आदि के साथ ही एकनिष्ठता का भी बड़े ही स्वाभाविक और मार्मिक ढंग से अंकन किया है। घनानन्द के काव्य में प्रेमी और प्रिय के मध्य किसी तीसरे की मध्यस्थता की व्यवस्था नहीं मिलती। इस दृष्टि से यह कवित्त एक अपवाद है। लेकिन इसमें भी दूत दूती के विधान के प्रति कवि का उपेक्षा भाव ही प्रगट हुआ है। प्रिय द्वारा भेजे गए दूत को देखकर नायिका को आश्चर्य होता है। वह प्रिय द्वारा लिखे गए पत्र को पढ़कर जानकारी प्राप्त करने की अपेक्षा दूत के मुख से ही वास्तविकता को जानना चाहती है। दूत को विश्वास में लेते हुए कहती है कि 'तुम जहाँ से पधारे हो, मेरे पलक पावड़ों पर ही चलकर आए हो। मेरे नैनों ने तुम्हारे पग-पग पर अपने प्राण न्यौछावर किए हैं। यहाँ प्रिय के प्रति अपने प्रेमाधिक्य की व्यंजना के साथ ही दूत के समुचित सत्कार का भाव भी व्यंजित है। नायिका संदेशवाहक के प्रति पूरा सौजन्य प्रकट करते हुए, उससे कुछ देर तक विश्राम

करने का भी निवदन करती है। वह सदेशवाहक से कहती है कि आप इतनी दूर से चलकर आए हैं तो अभी जाने की जल्दी न करें, थोडी देर आराम से बैठें। इससे आपको आराम भी मिल जाएगा और मेरा कुछ काम भी सिद्ध हो जाएगा। मुझे उस विश्वासघाती के सम्बन्ध मे बहुत कुछ पूछना है। यहा 'ब्यौरो घनो' पद म ब्यौरे (हाल चाल) का आधिक्य तो है ही, उसके उलझनपूर्ण होने का भी सकेत है। इतना निष्ठुर प्रिय जिसने एक लम्बी अवधि तक कोई खोज खबर नही ली—आज एकाएक इतना उदार कैसे बन गया कि अपने हाथ से पत्र लिखकर दूत द्वारा सदेश भेज रहा है। इसम विरहिणी के मन मे दुविधा उत्पन्न होना स्वाभाविक है। अत सबसे पहले वह यह जानना चाहती है कि 'उस निष्ठुर को मेरी याद कैसे आई?' यहा 'कौन विधि दीनी पाती'—बडा ही व्यजक प्रश्न है। इसके माध्यम से वह जानना चाहती है कि जिस समय उसने पत्र दिया, उस समय क्या कर रहा था, किसके साथ था, मेरी याद उसे किस प्रसग म आई? क्या कहकर उसने पत्र दिया? कोई मौखिक सदेश हो तो उसे भी सुनाएँ। क्योंकि इन्ही बातो से वास्तविकता का अनुमान किया जा सकता है। प्रिय के वास्तविक चरित्र के प्रति सदेशवाहक को सावधान करते हुए विरहिणी कहती है कि 'वह झूठ की सचाई से छना हुआ अर्थात अत्यन्त झूठा और प्रेम के कच्चेपन म पूरी तरह परिपक्व है। उसके गुणों (विपरीत लक्षण से अवगुणो) की गणना नही की जा सकती।' इस प्रकार प्रिय के कच्चे चिट्ठे को खोलकर वह दूत का विश्वास प्राप्त करना चाहती है जिससे प्रिय से सम्बद्ध वास्तविकता का सही पता मिल सके। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि प्रिय द्वारा भेजे गए पत्र के प्रति विरहिणी की कोई विशेष दिलचस्पी नही है। उसे पढने की उत्सुकता भी उसम नही दिखाई देती। इसके विपरीत रीतिबद्ध कवियो की विरहिणियाँ प्रिय द्वारा भेजे गए पत्रों को अपने जीवन की सबसे अमूल्य निधि के रूप म सँभाल कर रखती हैं। इसके साथ ही खण्डिता आदि के प्रसगो म मान मनौवल से लेकर वियोग की अन्यान्य स्थितियों म रीतिबद्ध कवियो ने सखी या दूती को महत्त्वपूर्ण भूमिका म प्रस्तुत किया है।

भाव विधान के साथ ही घनानन्द ने रूप विधान या शिल्प की दृष्टि से भी रीतिबद्ध कवियों से अपना पार्थक्य दिखाया है। रीतिबद्ध कवियो ने कवि वर्णन परिपाटी के अन्तर्गत स्वीकृत उपमानो के प्रयोग द्वारा भावो को एक प्रकार से जकड दिया है। 'सीखि लीनो मीन मृग खजन कमल नैन'—के माध्यम से ठाकुर ने इस प्रवृत्ति का अत्यन्त कटु प्रतिवाद किया है। केवल विभाव पक्ष के चित्रण म ही नही, वरन भाव पक्ष के चित्रण, अर्थात विभिन्न भाव स्थितियो और मनोदशाओं के चित्रण म भी रीतिकवियो ने बँधे-बँधाए उपमानो का ही सहारा अधिक लिया है। जैसे वियोग और सयोग की चरम दशा का उन्होंने 'बिछुरनि मीन की और मिलनि पतग की'—के आदर्श द्वारा प्रकट किया है। बीरो, प्रेम पर मर मिटो"

यही उनका प्रेमादश दिखाई देता है। अथात सयोग और वियोग दोना ही स्थितिया म क्रमश मछली और पतग की तरह प्राण त्याग देना ही उनके लिए परमादश बन गया था। रीतिमुक्त कविया न इसे पाय अस्वीकार किया है। ठाकुर ने सयोग और वियोग दोनों के सम्बध म लिखा है

'कवि ठाकुर आपनी चातुरी सों सबही सब भाति बखानतु है।
पर बीर मिल बिछुरे की बिथा मिलि क बिछुर सोइ जानतु है।

सयोग और वियोग की मार्मिक स्थितियों को वणन चातुय के द्वारा व्यक्त करना ठाकुर की दृष्टि से अस्वाभाविक ह। घनान द न तो बिछुरनि मीन की और मिलनि पतग की के आदश पर ही सीधे आक्षेप किया है

मरिबो बिसराम गन वह तो, यह बापुरा मीत तज्यौ तरसै।
वह रूप छटा न सहारि सकै यह तेज तब चितवै बरसै।
घनआन द कौन अनोखी दसा, मति आवरी बावरी ह्व थरस।
बिछुरें मिलें मीन पतग दसा, कहा मो िय की गति को परस।।

—घनआन द ग्र थावली, पृष्ठ ७८/२४०

वियाग और सयोग मे मीन और पतग की स्थिति प्रेमी की वास्तविक स्थिति का स्पश मात्र भी नहीं कर पाती। क्याकि मछली प्रिय स वियुक्त होकर मरन म ही विश्राम मानती है, लेकिन प्रेमी प्रिय से वियुक्त होकर भी उसक लिए जीता और तरसता रहता है। पतग सयोगकाल म प्रिय क सौन्दर्याधिक्य क प्रकाश से अभिभूत होकर अपन प्राणा का न्योछावर कर देता है, जब कि प्रेमी प्रिय के सौदय के ताप मे तपत हुए उसे दखता और निर तर आनन्दाश्रु विगलित करता रहता है। अत प्रेमी की साहसिकता का उन दाना म सवथा अभाव है। मछली की कायरता और जडता का अलग से उदघाटन करते हुए घनान द न लिखा है

हीन भये जल मीन अधीन कहा कछु मा अकुलानि समानै।
नीर सनेही का लाय कलक निरास ह्व कायर त्यागत प्रान।
प्रीति की रीति मु क्या समुझै जड मीत के पानि परे को प्रमान।
या मन की जु दसा घनआन द जीव की जीवनि जान हि जान।।

—घनआन द ग्र थावली, पृष्ठ ५/४

मछली कायर है, क्योकि अपन प्रिय (जल) से वियुक्त हात ही वह प्राण त्याग दती है। उसका मित्र जल भी जड है अत चेतन प्रिय म उसकी तुलना ही क्या। यहाँ कवि न चेतन प्रिय की उपक्षा का धैयपूवक वहन करन वाले प्रेमी की विषम पीडा को व्यक्त करने के लिए उक्त सादृश्य का अनुपयुक्त सिद्ध करते हुए

रीतिबद्धता का विरोध किया है। घनानन्द की रचनाओं में इस प्रकार के विरोध के स्वर स्थान स्थान पर मिलते हैं।

अधिकांश रीतिकवियों ने प्रेम की विषमता के उद्गार द्वारा ही प्रेम की पराकाष्ठा को व्यक्त किया है। लेकिन घनानन्द ने इस विषमता को सूफियों की, विशेषकर फारसी साहित्य की भांति आत्मानुभूति के स्तर तक उतारा है। इनके यहां विरह निरीहता की निष्क्रिय स्थिति न होकर एक कठिन साधना की स्थिति है जिसमें विरही एक साधक की तरह आत्मपीडन में लीन दिखाई देता है

आसा गुन बाँधि कै भरोसो सिल धरि छाती
पूरे पन सिन्धु मैं न बूडत सकाय हौं।
दुख दव हिय जारि, अन्तर उदेग आँच
रोम रोम त्रासनि निरंतर तचाय हौं।
लाख लाख भांतिन की बिरह दसानि जानि
साहस सहारि सिर आरे लौं चलाय हौं।
ऐसें घनआनँद गही है टेक मन माँहि
ऐरे निरदयी तोहि दया उपजाय हौं॥

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृ० ५५/१६६

प्रेम साधना में यह आत्मपीडन प्रिय के हृदय में दया उत्पन्न करने के लिए है उस प्रिय के हृदय में जो कि अत्यन्त निष्ठुर है। 'लाख लाख भांति की विरह दशाओं को जानकर उन्हें साहसपूर्वक झेलना' कुछ वैसा ही है जैसे अनेक साधना पद्धतियों का ज्ञान प्राप्त कर ईश्वर प्राप्ति का प्रयास। प्रेम और भक्ति—दोनों ही क्षेत्रों के लिए यह फारसी साहित्य की देन है। विषम प्रेम की इस गम्भीरता और साहसिकता का रीतिबद्ध कवियों में सर्वथा अभाव है। संयोग चित्रण में भी घनानन्द रीति कवियों यहां तक कि रीतिमुक्त काव्यधारा के अन्य कवियों से भी पर्याप्त भिन्न दिखाई देते हैं। इस सम्बन्ध में इनकी स्पष्ट स्थिति है

अनोखी हिलग दैया, बिछुरे तौ मिल्यौ चाहै
मिलें हू मैं मारे जारै खरक वियोग की।

अतः संयोग में भी घनानन्द के यहां वियोग की आशंका चैन नहीं लेने देती। इस विशिष्ट स्थिति के लिए उनकी जीवनगत परिस्थिति उत्तरदायी है। इन्हें क्षणिक संयोग के बाद शाश्वत वियोग मिला था। यह परिस्थिति रीतिबद्ध कवियों को नहीं प्राप्त हुई थी और रीतिमुक्त कवियों को पर्याप्त भिन्न रूप में मिली थी। रीतिबद्ध अधिकांश कवि स्वयं प्रेमी जीव नहीं थे। व्यक्तिगत स्तर पर उन्हें प्रेम के विभिन्न पक्षों का अनुभव नहीं प्राप्त हो सका था। इसलिए

उनका प्रेम चित्रण अधिकाशत काव्य एव काव्यशास्त्रीय परम्परा से अर्जित जानकारी पर आधारित था। रीतिमुक्त कवियों म अधिकाश को प्रेम के सयोग और वियोग—दोना पक्षो का व्यक्तिगत अनुभव अवश्य था, लेकिन अतत उनका प्रेम उभयनिष्ठ और सयाग म ही पयवसित हुआ। परन्तु घनानन्द को अत्यल्पकालिक सयोग के बाद स्थायी रूप से वियोग को भेलना पडा था और सुजान की निमम उपक्षा के कारण वह जीवन म एकतरफा ही सिद्ध हुआ। इनका अधिकाश काव्य इस वियोग काल म ही लिखा गया है। अत इसम सयाग का चित्रण भी वियाग की गहरी छाया स अनुशासित है।

अपनी भाव सम्पदा के साथ ही भाषा एव शिल्प की दष्टि से भी घनानन्द अपने समकालीन कवियो स पयाप्त भिन्न दिखाइ देत हैं। सजी सँवरी अत्यन्त व्यजक एव लोकाक्ति मुहावरा से युक्त व्याकरण सम्मत ब्रजभाषा चित्रोपम एव लाक्षणिक विशेषण, सूक्ष्म भावो का सम्मूतन, विरोधाभास एव विरोध वैचित्र्य, प्रयोग-वचित्र्य, गहन अथ गभित श्लेष, भावानुकूल एव लयपूण अनुप्रास योजना आदि सभी दष्टियो से घनानन्द पूरे रीतिकाल म अपनी एक अलग पहचान बनाते हैं। इनकी इन्ही विशेषताओ को ध्यान म रखकर आचाय रामचन्द्र शुक्ल न लिखा है 'प्रेम की पीर ही लेकर इनकी वाणी का प्रादुर्भाव हुआ। प्रेम माग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा जबादानी का ऐसा दावा रखने वाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नही हुआ।'

(हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३२०)

४ कुछ निजी विशेषताएँ

घनानन्द की भाव सम्पदा और उनके काव्य शिल्प की विशेषताओं का समुचित परिचय प्राप्त करने के लिए, एतद्विषयक उनकी कुछ निजी विशेषताओं की जानकारी आवश्यक है। इसकी ओर संकेत करते हुए कवि मित्र एवं उसके प्रशस्तिकार ब्रजनाथ ने लिखा है

'बिनी कर जोरि कै बात कहौं, जो सुनौ मन कान द ह्न सो जू।
कविता घनआनँद की न सुनौ पहचान नहीं उहि खेत सा जू ॥'

—घनआनन्द कवित्त, पृ० २७४/७

'यदि उस खेत (क्षेत्र) से पहचान नहीं है तो घनानन्द की कविता को मत सुनो। यह क्षेत्र विषम या एकतरफा प्रेम की अनिर्वचनीय व्यथा का क्षेत्र है, जो उस काल के काव्यमर्मियों के लिए अपहचान का क्षेत्र बन गया था।

वस्तुत घनानन्द एक ऐसे युग के कवि हैं जिसमें अधिकांश कवियों में निजी विशेषताओं का सर्वथा अभाव दिखाई देता है। चिन्तामणि, भिखारीदास, देव, मतिराम, पद्माकर आदि अधिकांश रीतिबद्ध कवियों में पूर्ववर्ती काव्यशास्त्रीय परिपाटी का अंधानुकरण करने के कारण प्राय एकरसता दिखायी देती है। अत एक को दूसरे से अलग करके पहचान पाना लगभग असंभव है। लेकिन रीतिकाल की रीतिमुक्त स्वच्छन्द काव्यधारा की अपनी सामान्य विशेषताओं के बावजूद इसके कवि अपनी निजी विशेषताएँ भी रखते हैं, जिन्हें भाव, भाषा शिल्प आदि सभी क्षेत्रों में आसानी से देखा जा सकता है। घनानन्द इस धारा के सर्वोत्तम कवि हैं। इस उत्तमता का आधार इनकी सर्वाधिक निजी विशेषताएँ ही हैं। इन विशेषताओं को घनानन्द के प्रशस्तिकार ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है

नही महा ब्रजभाषा प्रबीन और सुन्दरतानि के भेद को जानै।
जोग बियोग की रीति मैं कोबिद, भावना भेद सरूप को ठानै।
चाह के रंग मैं भीज्यौ हियो, बिछुरैं मिलैं प्रीतम साति न मानै।
भाषा प्रबीन सुछंद सदा रहै सो घनजी के कवित्त बखानै॥'

—घनआनन्द कवित्त, पृ० ४१/१

'घनानन्द की कविता का समुचित मूल्यांकन केवल वही कर सकता है, जो स्वयं बहुत बड़ा प्रेमी हो, ब्रजभाषा में निपुण, सुन्दरता के भेदोपभेदों का पारखी

हो, सयोग और वियोग की विभिन्न मनोदशाओं का आत्मानुभूति के स्तर पर पाता हो, भावना के विभिन्न भेदोपभेदों तथा उनके स्वरूप को ठीक से समझता हो, प्रेम के रग से जिसका हृदय सरोबार हो, सयोग और वियोग—दोनों ही स्थितियों म जो समान रूप से अशांत बना रहे, नायक की सामान्य गतिविधियों से परिचित हो और किसी प्रकार के बधन को न स्वीकार कर जो स्वच्छद रहे।' यहाँ ब्रजनाथ न घनानन्द के काव्य के लिए जिन पाठकीय अपेक्षाओं की ओर सकेत किया है वे ही कवि की निजी विशेषताएँ भी हैं। इन विशेषताओं से घनानन्द एक स्वच्छन्द प्रेमी कलाकार के रूप म हमारे सामने आते ह। इन्हें आयत्त ध्यान म रखकर ही उनकी कविता को ठीक से समझा जा सकता है। ब्रजनाथ न आगे लिखा है

> जग की कविताई के धोखे रहैं ह्याँ प्रबीनन की मति जाति जकी।
> समुझै कविता घनआनद की हिय आँखिन नेह की पीर तकी॥
>
> —घनआनन्द कवित्त, पृ० ४१/३

यहाँ प्रशस्तिकार न 'जग की कविताई' अथात अन्य लोगों (रीतिबद्ध कवियों) की कविता से घनानद की कविता की भिन्नता को सकेतित किया है। इस भिन्नता का मुख्य आधार है स्वानुभूति की प्रधानता। रीतिबद्ध कवियों की भाँति काव्य शिक्षा इसका आधार नहीं है। इसलिए 'जो हृदय की आँखों से प्रेम की पीडा को देख सकने की सामर्थ्य रखता है, वही घनानन्द की कविता को समझ सकता है। यहाँ 'हृदय की आँखों से देखने' के माध्यम से प्रशस्तिकार ने आत्मानुभव के स्तर पर समझने के तथ्य को सकेतित किया है। यह साकेतिक अभिव्यक्ति घनानन्द की बहुत बडी विशेषता है। बिहारी तथा अन्यान्य रीतिबद्ध कवियों ने प्रेम की पीडा के इजहार के लिए जिस विरहजन्य ताप, कृशता आदि का अतिरंजित वर्णन किया है, उसका घनानन्द की कविता म सर्वथा अभाव है। अपनी अनुभवनिष्ठ प्रकृति के कारण घनानन्द की 'प्रेम की पीर' का स्वरूप ही कुछ विचित्र हो गया है। इस विचित्रता की ओर कवि ने स्वय सकेत करते हुए लिखा है

> 'पहचान हरि कौन मो से अन पहचान को।
> त्यौं पुकार मधि मौन, कृपा-कान मधि-नैन ज्यौं॥'
>
> —घनआनन्द कवित्त, पृ० ५२/२२

मौन के मध्य होने के कारण पुकार की अगम्यता को सुगम बनाने के लिए नेत्रों के मध्य ही कृपा के कान आवश्यक हैं, अथात प्रिय की निष्ठुरता के सन्दर्भ म विरही की व्यथा का, उसकी भावभूमि पर पहुँच कर ही अनुभव किया जा

सकता है। वाणी के माध्यम से उसे सुनकर नहीं देखा (समझा) जा सकता, सहृदयतापूर्वक केवल देखकर ही सुना जा सकता है। घनानन्द की वाणी का वास्तविक वैभव हम मौन के मध्य ही मिलेगा। विषम या एकतरफा प्रेम की पीडा की अभिव्यक्ति म इन्होंने प्राय मौन की भाषा का सहारा लिया है। प्रेम की एकनिष्ठता और प्रिय द्वारा निरतर उपेक्षा स उत्पन्न गभीर स्थिति की ओर सकेत करते हुए कवि न लिखा है

'इत अनदेख दखिवई जोग दसा भई,
त तो आनाकानी ही मो बाध्यो दीठि-नार है।
तरें बहरावनि रई है का बीच, हाय,
बिरही बिचारन की मौन म पुकार है॥
—घनआनन्द कवित्त, पृ० १४३/१८६

प्रिय पक्ष से इस निमम उपेक्षा के बावजूद प्रेमी निराश नहीं होता। उसम एक अदम्य साहस और विश्वास भी दिखाई देता है

'आनाकानी आरसी निहारिबो करौगे कौ लौं
कहा मो चकित दसा त्यौं न दीठि डोलि है।
मौन हू सो देखिहौं, कितेक पन पालिहो जू,
कूक भरी मूकता बुलाय आप बोलिहै।
जान, घनआनद यौ मोहि तुम्है पज परी,
जानिय गी टेक टरें कौन धौ मलोलि है।
रुई दियें रहौगे कहा लौ बहराइबे की,
कबहूँ तौ मेरियै पुकार कान खोलि है॥'
— घनआनन्द कवित्त, पृ० ६६/१०४

निष्ठुर और अनुपस्थित प्रिय को सबोधित विरहिणी की इस उक्ति म एक विशेष प्रकार का साहस और आत्मविश्वास झलकता है। वह कहती है कि 'तुम कब तक बहानेबाजी का दपण देखत रहोगे अर्थात जान बूझ कर कब तक मेरी उपक्षा करते रहोगे? क्या मरी चकित कर देने वाली इस दशा को देखकर भी तुम अविचल रह सकोगे? मैं मौन भाव से देख रही हूँ कि तुम कब तक अपनो न देखने की (विमुख रहन की) प्रतिज्ञा का पालन करते हो! मरा हाहाकार (कूक) से भरा मौन (मूकता) तुम्हारे मौन (उपेक्षा भाव) का समाप्त कर ही दम लेगा।' विरहिणी दृढ विश्वास के साथ चुनौती भरे शब्दा म आग कहती है कि अत्यधिक आनन्द से युक्त प्रिय सुजान! तुम्हारे और मेरे बीच विमुख रहन और अपने अनुकूल बना लेने की होड लगी हुई है। अब देखना है कि अपनी प्रतिज्ञा से टलन

का मलाल (पछतावा) किसे होता है ! तुम कब तक बहानबाजी की रूई अपने कान म दिए रहोगे, अथात् बहरा बनने के बहाने पर कब तक टिके रहोग ? कभी तो मेरी इस मौन पुकार से तुम्हारे कान खुलेंग अर्थात मेरा यह मौन तुम्हारे निमम उपेक्षाभाव का समाप्त करके ही साँस लेगा।

'मौन' घनानन्द की एक महत्वपूण निजी अवधारणा है, जो प्रेमी और प्रिय के पारस्परिक सम्बन्धों तक सीमित न रह कर उनके पूरे काय शिल्प म भी व्याप्त है। एक व्यजना-शिल्प के रूप म काय के अन्तगत मौन की वास्तविक गरिमा को पूरे मध्यकाल म केवल घनानन्द ने ही समुचित रूप स समझा था। इस सम्बन्ध म उनकी स्पष्ट मान्यता है

'उर भौन मैं मौन को घूघट कै दुरि बठी बिराजति बात बनी।
मदु मजु पदारथ भूपन सा सुलसै हुलसै रस रूप मनी।
रसना अली कान गली मधि ह्व पधरावति लै चित्त सज ठनी।
घनआनँद बूयनि अक बस बिलस रिझवार सुजान धनी॥

—घनआनन्द कवित्त, पृ० १८६/२७४

'कविता रूपी नव वधू मौन का घूघट डाल हृदय रूपी भवन मे छिप कर विराजमान है। कोमल कात शब्दाथ (पदारथ) रूपी आभूषणा स सुसज्जित आनन्द स्वरूप वह मणि (कविता) उमगित (मिलनोत्सुक) होती है। उसकी यह मिलनोत्कण्ठा जिह्वा रूपी सखी के माध्यम से पूरी होती है जो श्रवण रूपी गली के माग से उसे चित्त रूपी सुसज्जित शया पर ले जाती है। वहा नायक रूपी चतुर सहृदय (रिझवार) अपनी काव्य समझ रूपी गोदी म उसे लेकर विलास करता है।' कवि ने यहा एक प्रकार से काय की आन्तरिक विशेषता के साथ ही पाठक की पात्रता की ओर भी सकेत किया है— बूयनि अक और रिझवार सुजान' शब्दो का प्रयोग इसका स्पष्ट प्रमाण है।

विषम प्रेम की अनिवचनीय विरहानुभूति की अभिव्यक्ति म घनान द ने प्राय मौन की साकेतिक पद्धति का सहारा लिया है। यह साकेतिकता उनकी निजी विशेषता है जिसे एक उदाहरण के माध्यम से अच्छी तरह समझा जा सकता है

कत रम उर अन्तर म सुलहै नहि क्यो सुखरासि निरतर।
दत रहै गहै आगुरी त जु वियोग के तेह तचे परततर।
जो दुख देखति हौ घनआनँद रनि दिना विन जान सुततर।
जानै वेई दिन राति बखानें त जाय पर दिन रात का अतर॥

—घनआनन्द ग्रथावली, पृ० ६७/२०७

वस्तुत विरह वेदना अनुभवगम्य है। वह वाणी द्वारा प्रकट नही की जा

सकती। विरहिणी का यह कथन कि 'प्रेम की वश्यता स्वीकार करके, उसकी आंच मे अच्छी तरह तपन वाले लोग भी, मरी पीडा को दखकर दाँता-तले अँगुली दबाए रह जाते हैं—विरह-वेदना की स्थिति का विवरण नही वरन उसकी साकेतिक व्यजना है। 'बखान त जाए परै दिन राति का अतर'—म जो व्यजना है, वह स्थिति के कथन म कभी नही आ सकती। इस प्रकार प्रेम पद्धति और व्यजना शिल्प—दोनो ही दृष्टियो स घनानन्द की अपनी कुछ निजी विशेषताएँ हैं जिन्ह ध्यान म रखकर ही उनक काव्यगत वैशिष्ट्य को समुचित रूप स समझा जा सकता है।

५ प्रेम का स्वरूप

अन्य रीतिबद्ध कवियों की भाँति घनानन्द ने अपने काव्य में प्रेम का केवल चित्रण ही नहीं किया है, वरन अपने जीवन में भी ये प्रेम मार्ग के 'धीर पथिक' रहे हैं। जीवन-परिचय के सन्दर्भ में हमने इस तथ्य पर विचार कर लिया है कि सुजान के प्रति इनका प्रेम विषम (एकतरफा) सिद्ध हुआ। अपने काव्य में भी इन्होंने अधिकांशतः विषम प्रेम की पीडा को ही अंकित किया है। घनानन्द का जो भी ज्ञात जीवन वृत्त हमारे सामने है उसे ध्यान में रखकर यदि उनका काव्य पढा जाए तो ऐसा लगता है कि इन्होंने सुजान के साथ अपने सम्बन्धों को ही बार बार दुहराया है। इनके संयोग चित्रण को भी देखने पर यही लगता है कि इस अनुभूति को भी कवि ने अपने वियोग काल में ही काव्यबद्ध किया है। इसलिए उस पर भी विषम प्रेम-जन्य वेदना की गहरी छाया मँडराती हुई दिखाई देती है।

भारतीय काव्य परम्परा के साथ ही सामाजिक परम्परा की दृष्टि में भी विषम या एकतरफा प्रेम को स्वीकृति नहीं मिली है। हमारी काव्यशास्त्रीय परम्परा में परकीया प्रेम का अत्यधिक विस्तार मिलने के बावजूद एकतरफा प्रेम को असामाजिक मानकर निषिद्ध ठहराया गया है। प्रिय की निर्मम उपेक्षा के बाद भी उससे एकनिष्ठ भाव से प्रेम किए जाना भारतीय प्रेम पद्धति के नितांत विरुद्ध है। फारसी काव्य में सूफी प्रभाववश इस प्रकार के प्रेम को आदर्श के रूप में स्वीकार किया गया है। घनानन्द के साथ ही अधिकांश रीतिमुक्त कवियों पर भी इस प्रेम पद्धति का स्पष्ट प्रभाव दिखायी देता है। बोधा में फारसी शब्दावली का प्रचुर प्रयोग फारसी काव्य के ढर्रे पर मिलता है। यह उनके फारसी साहित्य से परिचय का सूचक है। घनानन्द का फारसी भाषा से परिचय इनकी वियोग बेलि, इश्कलता आदि रचनाओं से स्पष्ट हो जाता है। प्रेम के विषम रूप और उसकी पीडापरकता की दृष्टि से भी घनानन्द पर फारसी साहित्य का प्रचुर प्रभाव है। इनके भंडौवाकार ने तो इन्हें फारसी का भाव और मजमून—दोनों की चोरी करने वाला कहा है। लेकिन यह प्रभाव केवल प्रेरणा तक ही सीमित है। जिस प्रकार इन्होंने फारसी के एकतरफा प्रेम को सुजान के माध्यम से अपने जीवन में उतारा है ठीक उसी प्रकार फारसी की लाक्षणिकता को अपनी भाषा की उपेक्षित सामग्री लोकोक्ति मुहावरे, रूढ लक्षणाओं आदि में ढाला है। यही स्थिति ठाकुर की भी है। लोकोक्तियों और मुहावरों की जो छटा ठाकुर में मिलती है उस पर कहीं से भी फारसी की छाप नहीं देखी जा सकती। विषम प्रेम के सम्बन्ध में उनका एक

उदाहरण है

> या निरमोहिनि रूप की रासि जाऊ उर हत न ठानति ह्व हैं।
> बारहुँ बार विलोकि घरी घरी सूरत तो पहिचानति ह्व हैं।
> ठाकुर या मन की परतीति है जो प सनेह न मानति ह्वै हैं।
> आवत ह नित मर लिए इतना त विसेप क जानति ह्व है॥

यहाँ प्रिया का निर्मोही बताया गया है। लेकिन उसक क्रिया क्लाप स किसी प्रकार की निष्ठुरता नही दिखाई गई है। प्रेमी मात्र इसलिए उसके निकट स बार बार गुजरता है कि नायिका उसकी शक्ल सूरत को पहचान ल। प्रेमी केवल इस विश्वास से सतुष्ट है यदि नायिका प्रेम न भी करती होगी तब भी वह इतना अवश्य ममझती होगी कि मेरे लिए ही यह नित्य आता है। यह एकतरफा प्रेम की एक स्थिति है, जिसम प्रेमी का पता लग जाना पर्याप्त है कि प्रिय उसके प्रेम को जानता है। लेकिन फारसी साहित्य की प्रम पद्धति की चरमदशा तो वह है जहाँ प्रिय की उपेक्षा क बावजूद प्रेमी एकनिष्ठ भाव स प्रेम किए जाता है—केवल इस आशा पर कि शायद कभी उसकी सहानुभूति मिल जाए। यदि उस यह भी विश्वास हो जाए कि प्रेम साधना म उसकी मृत्यु के बाद प्रिय के मुख स करुणाजनित सहानुभूति के दो शब्द निकल जाएगे या उसकी आँखो म दो बूद आँसू आ जाएँगे तो प्रेमी प्रस नतापूवक प्राणोत्सग के लिए भी तैयार हो सकता है। लेकिन ठाकुर के यहाँ ऐसी स्थिति नही है। वसे तो बोधा भी यह स्वीकार करते है

> 'हमको वह चाहै कि चाहै नही, हमैं नह को नातो निवाहनो है।'

लेकिन वे इस स्थिति तक भी पहुँच जाते हैं कि

> 'विष खाइ मरै कि गिरै गिरिते दगादार त यारी कभी न कर।

समूची रीतिमुक्त काव्यधारा मे घनानन्द ही एक ऐसे कवि है जिन्होंने एक निष्ठ भाव से दगादार से यारी' की है। प्रिय की लाख उपेक्षा और निष्ठुरता के बावजूद प्रेम के प्रति उनम कही विचलन नही दिखाई देता। प्रिय की निष्ठुरता को जानते हुए भी उसके प्रति एकनिष्ठ भाव से उन्मुख रहना, प्रेम को साधन की अपेक्षा साध्य मान लेना है। प्रिय के हृदय म अपने प्रति प्रेम को असभव मानते हुए घनानन्द की विरहिणी कहती है

> 'चद चकोर की चाह कर, घनआनद स्वाति पपीहा को धाव।
> ज्यौं भ्रसरनि के ऐन बसै रबि मीन पै दीन ह्व सागर आव।
> मोसो तुम्हैं सुनौ जान कृपानिधि नेह निबाहिबो यों छबि पाव।
> ज्यौं अपनी रुचि राचि कुबेर, सुरकहि ल निज अक बसाव॥'

—घनआनन्द ग्रथावली पृ० ६५/२०२

अनुपस्थित प्रिय का सम्बोधित कर विरहिणी कह रही है कि 'जिस प्रकार चन्द्रमा चकोर से प्रेम करने लगे, स्वाति-जल प्रेमातुर हो कर पपीहे के पास आए, सूर्य त्रसरेणु (धूलि के चमकदार सबसे छोटे कण) के घर में निवास करने लगे, समुद्र अनाथ होकर मछली के पास दौड़ा जाए, धन के अधिष्ठाता कुबेर अपनी इच्छा से अनुरागपूर्वक किसी अति निर्धन को अपनी गोद में बिठा ले—जिस प्रकार ये सभी बातें असंभव हैं, ठीक उसी प्रकार आपका मेरे साथ प्रेम निर्वाह भी असंभव है। इस एकतरफापन के बावजूद एकनिष्ठ भाव से प्रिय के प्रति समर्पण घनानंद के प्रेम की बहुत बड़ी विशेषता है

> घनआनंद प्यारे सुजान सुनौ, जिहि भांतिन हौ दुख सूल सहौं।
> नहि आवनि औधि न रावरी आस, इते पर एक सी बाट चहौं।
> यह देखि अकारन मेरी दसा, कोउ बूझै तौ ऊतर कौन कहौं।
> जिय नेकु विचारि कै देहु बताय, हहा पिय दूरि ते पाय गहौं॥

—घनआनंद ग्रंथावली, पृ ८८/२७३

प्रिय ने अपने आने की न कोई निश्चित अवधि दी है और न ही उससे इस प्रकार की आशा की जा सकती है। फिर भी विरहिणी एकनिष्ठ भाव से उसके आगमन की प्रतीक्षा कर रही है। एकतरफा प्रेम में इस प्रकार की एकनिष्ठता फारसी काव्य की विशेषता है। फारसी प्रेम पद्धति की यह एकनिष्ठता और सूफियों के 'प्रेम की पीर' को घनानंद ने अत्यंत सहज रूप से अपनाया है। लेकिन इससे यह नहीं समझना चाहिए कि इस प्रकार की एकनिष्ठता और 'प्रेम पीर' कवि द्वारा कहीं से उधार ली गई है। अपनी वस्तुगत परिस्थितियों के फलस्वरूप ये दोनों ही विशेषताएँ उसकी जीवनधारा और भावधारा के साथ संश्लिष्ट होकर कविता में आई हैं। इस वेदना का मूलस्रोत कवि जीवन का एकतरफा किन्तु एकनिष्ठ प्रेम रहा है। विरहिणी का केवल प्रिय से यह पूछना कि 'मेरी अकारण विरहावस्था को देखकर कोई पूछेगा तो मैं उत्तर क्या दूंगी—तुम स्वयं सोचकर इसे बता दो। नायिका की यह मनोदशा स्थिति को अत्यधिक हृदयद्रावक बना देती है। यहां आकर अविचलित एकनिष्ठता फारसी पद्धति के एकतरफा प्रेम को भारतीय आचार निष्ठा और प्रेमादर्श से समन्वित कर देती है। घनानंद के प्रेम के स्वरूप को यदि इस संदर्भ में देखा जाए तो उसमें स्वच्छंदता परम साहसिकता घोर रूपासक्ति गहरी तन्मयता भावनामूलकता, निष्कामता आदि प्रेम की अन्यान्य विभूतियां विषम प्रेम को सिंचित कर उसे एक अभिनव आचार से जोड़ती हैं। अतः एकतरफापन या विषमता को केन्द्र में रखकर उक्त विशेषताओं के विवेचन द्वारा हम घनानंद के प्रेम के स्वरूप को आसानी से समझ सकते हैं।

घनानन्द के प्रेम के स्वच्छन्द स्वरूप का यदि गहराई से देखा जाए तो हम स्पष्ट रूप से दिखाई देगा कि उसका वास्तविक अभिप्राय प्रेम की स्वच्छन्द क्रीडा या सामाजिक विधि निषेधों की अस्वीकृति मात्र नहीं है। यह स्वच्छन्दता विषम प्रेम की एकनिष्ठता से अनुशासित है, जिसके मूल में परम साहसिकता के दर्शन होते हैं

'अन्तरहौ किधा अत रहौ, दग फारि फिरौ कि अभागिनि भीरो।
आगि जरा अकि पानि परौं, अब कैसी करौ हिय का विधि धीरौं।

पाऊँ कहा हरि हाय तुम्हे, धरनी मे धसौ कि अकासहिं चीरौ॥'
—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृष्ठ १२७/४१६

यहा विरहिणी का उद्दाम आवेग प्रकट हुआ है। वह अनुपस्थित प्रिय को सम्बोधित करके कह रही है कि 'तुम मेरे हृदय मे हो या अन्यत्र कही—इसका मैं निर्णय नही कर पा रही हूँ। अत तुम्हे आँखें फाड़कर बाहर खोजू या अपने भाग्य को रोऊँ। तुम्हे प्राप्त करने के लिए आग मे जलू या पानी मे डूबू ? अब क्या करूँ और किस प्रकार अपने हृदय को धीरज बँधाऊँ ? ऐ प्रिय ! तुम्हारी प्राप्ति के लिए पृथ्वी मे धसू या आकाश का चीरूँ ?' इस प्रकार की अधीर साहसिकता के पीछे एक विशेष प्रकार की दृढता है जो कभी कभी हठ या चुनौती की सीमा तक पहुँच जाती है

तुम दीनी पीठि दीठ कीनी सन्मुख यान,
तुम पड़े पर, राखि रह्यौ यह प्रान का।
तुम बसो न्यारे यह नकहू न हाता होय
तुम दुखदाइ, यह कर सुख-दान को।
सुनौ घनआनन्द सुजान हो अमोही तुम
याको माहमोह मो बिना न जान आन का।
और सब सहा कछू कहौं न कहा है बस,
तुम्हें बदा तो प जो बरजि राखो ध्यान को॥'
—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृष्ठ १००/३१०

यहाँ अनुपस्थित प्रिय को सम्बोधित करते हुए विरहिणी कह रही है कि 'बिना किसी उपालम्भ के मैं सब कुछ सह रही हूँ और इसके लिए विवश भी हूँ। लेकिन तुम्हे तब मानू, जब तुम मेरे ध्यान को भी रोक दो। जिस समय से तुम विमुख हुए हो उसी समय से इसने (ध्यान ने) तुम्हारी ओर दृष्टि की है अर्थात तुम्हारे सम्मुख हुआ है। तुम मेरे जिन प्राणों के पीछे पड़े हो, यह (ध्यान) उनको

निरन्तर रक्षा कर रहा है अर्थात् तुम्हारे ध्यान में ही मैं जीवित हूँ। तुम मुझसे अलग रहते हो, लेकिन यह (तुम्हारा ध्यान) मुझसे एक पल के लिए भी अलग नहीं होता। तुम मुझे दुख देने वाले हो लेकिन यह मुझे निरंतर सुख देता रहता है। तुम मेरे प्रति निष्ठुर हो, लेकिन यह मोह से ग्रस्त होकर मेरे अतिरिक्त और किसी को जानता ही नहीं।' हठ की सीमा तक पहुँची हुई इस साहसिकता का आधार एकनिष्ठता है। इसमें यदि कहीं उलाहने की बात आती भी है तो वह आक्रोश विहीन एक असहाय विवशता के ही रूप में

तेरे देखिबे कौं सबही त्यों अनदेखी करी,
तऊँ जौ न देखैं तौ दिखाऊँ काहि गति रे।
सुनि निरमोही एक तोही मां लगाव मोही,
सोही कहि कसैं ऐसी निठुराई अति रे।
विष सी क्यानि मानि सुधा पान करौं जान!
जीवन निधान है बिसासी मारि मति रे।
जाहि जो भजै मो ताहि तजै घनआनन्द क्यौं,
हित कै हितूनि कहौ काहू पाई पति रे॥'

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृष्ठ ७८/२४१

प्रेमी और प्रिय के मध्य यह वैषम्यमूलक विरोध भाव केवल प्रिय पक्ष से है। प्रेमी की सर्वात्मना समर्पण भावना को यह विरोध पुष्ट करता है और कष्ट-सहन से लेकर आत्मपीड़न तक के लिए प्रेरित करता है। अपने इस रूप में घनानन्द के यहाँ प्रेम क्रीडा विलास न रह कर एक कठोर साधना बन गया है

'गरल गुमान की गगरनि दसा को पान,
करि करि, घोंम रति प्रान घट घोंटिबो।
हूत खेत धूरि चूरि चूरि साँस पाव राखि,
विष समुदेग-बान आगें उर ओटिबो।
जान प्यारे जौ न मन आन तौ आनन्दघन,
भूलि तू न सुमिरि परेख चख चोंटिबो।
तिन्हैं यौ सिराति छाती तोहि व लगति ताती,
तेर बाट आयौं है अँगारनि पै लोटिबो।'

—घनआनन्द कबित्त, ५६

विष के गर्व का चूर कर देने वाली भीषण विरह-दशा का स्वीकार (पान) कर, रात दिन प्राणों का, शरीर के अन्दर घोटते हुए प्रेम के रण क्षेत्र की धूलि में अपनी साँसों का चूर चूर करते हुए, विरहजन्य व्याकुलता के विषाक्त बाणों की

घाव का अपने सीन पर साहसपूर्वक झेलने वाले प्राणा का विरहिणी धय बधाती है। वह कहती है कि यदि इतना सब करन पर भी प्रिय अनुकूल नही होता ता तुम (प्राण) उसक प्रेमपूर्ण कटाक्ष स घायल हाने की व्यथा पर भूलकर भी पश्चाताप न करो। क्याकि जिसम तुम्ह पीडा हाती ह, उसी (निष्ठुरता) मे उनका हृदय शीतल होता है। अत तुम इस बात को तय मान लो कि अगारा पर लेटना, अर्थात कष्ट सहन करना ही तुम्हारे भाग्य (हिस्से) म आया है।' इस प्रकार हम देखत है कि घनानन्द के स्वच्छन्द प्रेम म निहित साहसिकता आत्मनिग्रह से अनुशासित है। बाह्य विधि निषेधो के उल्लघन के बावजूद इसम एक सदाचारमूलक नतिक आत्मानुशासन मिलता है। अत स्वच्छन्दता और साहसिकता घनानन्द के यहा फारसी साहित्य से भिन्न भारतीय आचार और शील से समन्वित होकर आयी है। प्रिय के प्रति अशेष भाव से आत्म समपण, विदेशी प्रभाव का परिष्कार करत हुए उस दश की आदश परम्परा से जोडता है।

घनानन्द के प्रेम म इस प्रकार की एकनिष्ठता और अदम्य साहसिकता का मूल आधार है **घोर आसक्ति**। इनका प्रेम साहचय जन्य न होकर प्रथम दशन जन्य है। अत यहा आसक्ति मुख्यत रूपासक्ति है, जिसका कारण प्रिय का अदभुत सौन्दय है। इसे कुछ उदाहरणो द्वारा आसानी से समझा जा सकता है

१ 'जब ते निहारे घनआनन्द सुजान प्यारे,
तब ते अनोखी आगि लागि रही चाह की।'
—घनआनन्द कबित्त, १८

२ जब त निहार इन आखिन सुजान प्यारे
तब ते गही है उर आन देखिब की आन।
—घनआनन्द कवित्त, ४७४

३ जब त सुजान प्यारे पुतरीनि तारे,
आखिन बस ह्वौ सब सूना जग जाहिय।
—घनआनन्द कबित्त, ४७३

४ 'वह रूप की रासि लखी जब तें
सखि आखिन क हटतार भई।
—घनआनन्द कवित्त, २५८

इन सभी उदाहरणा स स्पष्ट है कि घनानन्द के यहाँ प्रेम का आधार प्रिय का अपार सौन्दय है जिसम दशनाभिलाषा ही सबस प्रमुख है। घार रूपासक्ति और दशन की अदम्य अभिलाषा वियाग र मात्र ही इनक सयाग चित्रणो म भी समान रूप म मिलती है। इस आसक्ति म न कहीं गाहस्थ्य जीवन का अपशाएँ हैं और न ही काम-वासना या शारीरिक सम्पक की आकांक्षा। इसम मिलती है एक अशेष

भोर तें साँझ लौं कानन ओर निहारति बावरी नेकु न हारति।
साँझ तें भोर लौं तारन ताकिबो तारनि सों इकतार न टारति।
जौ कहूँ भावतो दीठि परै घनआनन्द आँसुनि औसर गारति।
मोहन सोहन जोहन की लगियै रहै आँखिन के उर आरति॥'

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृष्ठ २११ =५

यह स्थिमात्र (दर्शन की इच्छा) बिहारी आदि अन्य समसामयिक कवियों में पर्याप्त भिन्न है। इसमें कहीं भी लुकाछिपी या मिलन के मौन संकेत नहीं मिलेंगे। साथ ही इसमें मुग्धा नायिका की काम और लज्जा के मध्य की स्थिति भी नहीं मिलती। यहाँ प्रिय के अन्दर तक उतर जाने या उसे अपने अन्दर उतार लेने की सब कुछ देख-समझ लेने की आतुर आकांक्षा है। इसलिए वियोग की भाँति ही संयोग में भी प्रिय को भर आँख देख पाने की लालसा बनी ही रहती है। सामान्यतः संयोग के समय आसक्ति कुछ बाह्याचरण की ओर उन्मुख होती है उसकी वास्तविक तीव्रता वियोग में ही देखने को मिलती है। लेकिन घनानन्द के यहाँ वह संयोग और वियोग—दोनों में समान रूप से बनी रहती है। आसक्ति की इस समतुल्यता के कारण इनके संयोग और वियोग—दोनों ही स्थितियों के चित्रणों में एक गहरी तन्मयता मिलती है। इस तथ्य को स्पष्ट रूप से समझने के लिए संयोग का एक उदाहरण लिया जा सकता है

'सुनि री सजनी रजनी की कथा इन नैन चकोरन ज्यों बितई।
मुख चन्द सुजान सजीवन को लखि पाएँ भई कछु रीति नई।

अभिलाषनि आतुरताई घटा तबही घनआनन्द आनि छई।
सु विहाति न जानि परी भ्रम सी कब ह्वैं बिसवामिनि बीति गई ॥'

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृष्ठ ८५/२६४

यहाँ नायिका द्वारा सखी के सम्मुख अपने सयोग के समय के अनुभवा का वणन है। इस काल के देव मतिराम, पद्माकर आदि रीतिबद्ध कविया के लिए इस तरह के प्रसग अत्यन्त आकर्षक रहे हैं। उनके यहा नायिकाएँ अपन सयोगकालीन सुखद अनुभवो को अत्यन्त उत्साह के साथ अपनी सखिया के सामन विस्तार से प्रस्तुत करती ह। रूपगर्विता और गुणगर्विता नायिकाएँ तो इस प्रकार के सुखद अनुभवा का अतिरजित वणन करन म अघाती ही नही। लेकिन घनानन्द के यहाँ इस प्रकार के अनुभवों के वणन म भी काई उत्साह या विशेष रुचि नहीं लक्षित होती। प्रस्तुत सवैय म नायिका प्रिय मिलन स प्राप्त अनुभव को अत्यन्त असतोप के साथ सखी के सम्मुख प्रस्तुत करत हुए कहती है कि मिलन काल म प्रिय के मुख को देखत ही कुछ विलक्षण सा घटित हुआ। प्रिय के सम्मुख उपस्थित होत ही दशनाभिलापा के आधिक्य ने मुझे कुछ इस प्रकार घेर लिया कि विश्वास घातिनी रात किस प्रकार भ्रम की भाँति बीत गई—मुझे पता ही नही लगन पाया। सयोग काल की यह तल्लीनता जिसम मिलन सुख का कही पता नही लगता वियोग काल म कुछ और ही रूप धारण कर लेती है

अभिलाखनि लाखनि भाति भरी बरनीन रूमाच ह्व कापति हैं।
घनआनन्द जान सुधाधर-मूरति चाहनि अक मैं चापति हैं।
टग लाय रही पल पावडे कै सु चकोर की चोपहिं चापति हैं।
जब तें तुम आवनि-औधि करी तब तें अँखियाँ मग मापति हैं॥

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृष्ठ ११०/३४८

जब स प्रिय न आन की अवधि निश्चित कर दी है तब से विरहिणी की आँखें निरन्तर उसका माग नाप रही हैं। इस प्रक्रिया म लाख-लाख अभिलापाओ से युक्त होकर बरौनियों का काँपना, प्रिय की कल्पित मूर्ति का आखा द्वारा प्रेम पूवक आलिगन करना उसके माग म पलक-पाँवडे बिछा कर टकटकी लगाए हुए चकार की प्रतीक्षा को भी मात कर देना आदि क्रियाएँ विरहिणी की गहन तन्मयता का सकेतित करती हैं। झूठी अभिलाषा की प्रतीक्षा म लीन विरहिणी की सम्पूण व्याकुलता इस सवय म मुखरित हुई है। इस प्रकार की तन्मय प्रतीक्षा हम मीरा के अतिरिक्त और कहीं नहीं मिलेगी।

घनानन्द के प्रेम के स्वरूप निधारण म घोर आसक्ति और तन्मयता के साथ ही भावना मूलकता का भी महत्वपूण योग है। वस्तुत यह एसी विशेषता है, जा

इनक एकतरफा प्रेम को एक गुरु गभोर शील प्रदान करती है। प्रिय की निष्ठुरता का जानकर भी उसके प्रति एकनिष्ठ भाव से उन्मुख रहना, प्रेम के लिए प्रेम करना है—प्रेम का साधन के स्थान पर साध्य मान लेना है। स्वय पीडा सहकर भी प्रिय का कभी भला बुरा न कहना, उसकी निरन्तर मगल-कामना करना, भावना का भावना के स्तर पर जीना है। घनानन्द का प्रेम बहुत-कुछ ऐसा ही है। इसे कुछ उदाहरणा द्वारा आसानी से समझा जा सकता है

'जासा प्रीति ताहि निठुराई सा निपट नेह
कैसें करि जिय की जरनि सो जताइयै।

रैन दिन चैन को न लेस कहूँ पैये भाग
आपन ही ऐसे, दोष काहि धौं लगाइयै ॥'

—घनआनन्द ग्रन्थावली पृष्ठ ४८६/१

प्रिय की निष्ठुरता और अपने एकतरफा प्रेम से उत्पन्न विलक्षण पीडा मे व्याकुल विरहिणी प्रिय को दोषी न मानकर स्वय अपने भाग्य को ही उत्तरदायी ठहराती है। अनुभयनिष्ठ प्रेम की जलन का इजहार करना मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी अस्वाभाविक है। इसलिए विरहिणी अन्दर अन्दर ही घुटती रहती है। वह अपनी विरह वेदना को सहज रूप से सिर माथे लेकर प्रिय की मगल कामना करती है

इत बाट परी सुधि, रावरे भूलनि कैसें उराहनौ दीजिय जू।
अब तौ सब सीस चढाय लई जु कछू मन भाई सु कीजिय जू।
घनआनन्द जीवन प्रान सुजान! तिहारिय बातनि जीजियै जू।
नित नीके रहौ तुम्हैं चाड कहा प असीस हमारियौ लीजिय जू ॥

घनआनन्द ग्रन्थावली, पृष्ठ ८३/२५७

विरहिणी का यह कथन कि भाग्य के बँटवार मे मेरे हिस्से तुम्हारा स्मरण और तुम्हारे हिस्से मे मुझे भूलना आया है। अत तुम्हे उलाहना भी कैसे दे सकती हूँ। मुझे जो कुछ मिला है उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया है। अब तुम्हे जो अच्छा लगे करो। लेकिन इतना जान लो कि मैं तुम्हारी चर्चा के कारण ही जीवित हूँ। मेरे प्रति तुम्हारी कोई उत्कण्ठा नही है, फिर भी तुम कुशलपूर्वक रहो यही मेरा आशीर्वाद है। यह प्रेम आदर्श की उस भूमि पर प्रतिष्ठित है जहाँ पहुँचकर प्रेमी अपने प्रेम का कोई प्रतिदान नही चाहता। वस्तुत इस स्तर पर पहुँचा हुआ प्रेम अहैतुक या निष्काम हो जाता है। निष्कामता की इस स्थिति मे प्रिय के अनिष्ट की आशका मात्र मे प्रेमी व्याकुल हो जाता है। इस प्रकार की निष्कामता प्रेम का

भक्ति की समरसता में स्थापित कर देती है। जिस प्रकार भक्ति की चरमावस्था में भक्त का भगवान के साथ एकात्म्य हो जाता है ठीक उसी प्रकार प्रेम की चरमावस्था में प्रेमी का प्रिय के साथ एकात्म्य हो जाता है। इस सम्बन्ध में घनानन्द ने प्रेम को भक्ति और ज्ञान-योग से भी अधिक महत्त्व देते हुए लिखा है

> चंदहि चकोर करैं, सोऊ ससि देह धरैं,
> मनसा हू रहै एक देखिबे को रहै द्वै।
> ज्ञानहूँ तें आगे जाकी पदवी परम ऊँची,
> रस उपजावै तामैं भोगी भोग जात ख्वै।
> जान घनआनन्द अनोखो यह प्रेम पंथ
> भूलें ते चलत रहैं सुधि के थकित ह्वै।
> बुरो जिन मानौ जो न जानौ कहूँ सीखि लेहु,
> रसना के छाले परैं प्यारे नेह नावँ छ्वै॥'

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृष्ठ ६५/२६६

यहाँ कवि ने प्रेम योग को ज्ञान-योग से भी उच्च भाव भूमि पर प्रतिष्ठित किया है। क्योंकि यह अपनी चरम स्थिति में चन्द्रमा को चकोर और चकोर को चन्द्रमा की स्थिति में ला देता है। तात्पर्य यह कि जिस प्रकार ज्ञान की चरम दशा में ज्ञाता और ज्ञेय में अद्वैत स्थापित हो जाता है, ठीक उसी प्रकार प्रेम की चरम दशा में प्रेमी और प्रिय का अद्वैत हो जाता है। लेकिन घनानन्द ने चंदहि चकोर करैं के माध्यम से सूफी प्रेम की उस दशा का संकेत किया है, जिसमें परमात्मा स्वयं जीव से मिलनातुर हो जाता है। प्रेम की इस अद्वैतता से उत्पन्न आनन्द (रस) में भोगियों की भोग लिप्सा पूरी तरह तिरोहित हो जाती है। घनानन्द का प्रेम निष्कामता की इस स्थिति तक पहुँच कर वासना विहीन प्रेम का रूप धारण कर लेता है। प्रेम के इस अनोखे पथ पर आत्म विस्मृत होकर ही चला जा सकता है सतर्क होकर नहीं। अतः विषम होकर भी इनके प्रेम में अंततः एक समता की स्थिति मिलती है जो प्रेमी को बहुत बड़ा बना देती है। वस्तुतः यह सूफी प्रेमादर्श है जिसमें फारसी प्रेम की एकनिष्ठता और एकान्तिकता, सूफियों की पीड़ा, भारतीयता का आदर्श और भक्ति भावना का सुन्दर पुट मिलता है। प्रेम के इस मिश्रित स्वरूप के सम्बन्ध में घनानन्द ने लिखा है

> प्रेम को महोदधि अपार हेरि कै बिचार,
> बापुरो हहरि बार ही तें फिरि आयौ है।
> ताही एकरस ह्वै बिबस अवगाहैं दोऊ,
> नेही हरि राधा जिन्हैं देखें सरसायौ है।

ताकी कोऊ तरल तरग सग छूटयो कन,
पूरि लोकलोकनि उमडि उफनायो है।
साई घनआनन्द सुजान लागि हत होत
ऐसें मथि मन प सरूप ठहरायो है।।'

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृष्ठ ३८/११६

इस कवित्त क माध्यम स लौकिक और ईश्वरीय प्रेम के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय म कवि की मान्यता स्पष्ट हुई है। अपने जीवन म बहुत मनन मथन के बाद वह इस निष्कष पर पहुँचा है कि प्रेम एक महासागर है, विचार द्वारा जिसका पार नही पाया जा सकता। प्रेमी युगल राधा और कृष्ण उस महासागर का विवश भाव म, एकरस होकर अवगाहन करते ह, जिसके कारण वह उमगित होता है। उनकी क्रीडाजनित उमग स उठन वाली लहरा से छूटा हुआ एक तरल कण इस सम्पूण लाक म उफन कर फैल गया ह। वही उच्छिष्ट कण घनानन्द और सुजान के लौकिक प्रेम का आधार बना है। इससे स्पष्ट है कि कवि न लौकिक प्रेम को अलौकिक प्रेम का ही एक गोचर रूप माना है। इस नाते के तहत ही उसका लौकिक प्रेम बाद म ईश्वरीय प्रेम म परिवर्तित हो गया है। वस्तुत मध्य-कालीन चेतना की यह एक अनिवायता थी, जिसे हम सूर तुलसी, न ददास, मीरा रसखानि आदि म किसी न किसी रूप म अवश्य पाते ह। घनानन्द का लौकिक प्रेम भी प्रेम क विविध सोपानो से होता हुआ अन्तत अलौकिक प्रेम अर्थात भक्ति मे पयवसित हा गया है।

६ सौन्दर्य-बोध

घनानन्द के सहृदय पाठक और प्रशस्तिकार ब्रजनाथ ने इन्हें 'सुन्दरतानि के भेद' का जानने वाला कहा है। इसका तात्पर्य है, सौंदर्य के भेदोपभेदों को जानने वाला और उसके रहस्य का पारखी। घोर रूपासक्ति के सन्दर्भ में हमने पहले इस तथ्य को देख लिया है कि इनके प्रेम का मूलाधार अद्भुत रूप या सौन्दर्य ही है। इसके फलस्वरूप घनानन्द ने सौंदर्य का अत्यन्त मनोयोगपूर्ण अंकन किया है। इस दृष्टि से रीतिबद्ध ही नहीं, वरन् अन्य रीति मुक्त कवियों से घनानन्द में पर्याप्त अन्तर दिखाई देता है। बोधा को विरह निवेदन से ही अवकाश नहीं मिला और आलम सौंदर्य वर्णन में बहुत कुछ रीति के ढर्रे पर ही चले हैं। ठाकुर के पास सौंदर्य के सूक्ष्म निरीक्षण की दृष्टि का पर्याप्त अभाव दिखाई देता है। जहाँ तक रीतिबद्ध कवियों का प्रश्न है उन्होंने अनेक प्रकार के रूढ़ अप्रस्तुतों के माध्यम से उसे प्रायः आच्छन्न कर दिया है। उनकी दृष्टि सौंदर्य की मात्रा दिखाने पर ही अधिक रही है, उसके प्रभाव की व्यंजना की ओर उनका ध्यान कम गया है। इसके साथ ही नखशिख के परम्पराबद्ध और सटीक चित्रण के कारण भी उसमें प्रभावोत्पादन की क्षमता का सर्वथा अभाव मिलता है। किन्तु घनानन्द की दृष्टि सौंदर्य की बाहरी नाप जोख पर न जाकर, उसके प्रभाव की व्यंजना पर अधिक रही है। अतः इनके सौंदर्य चित्रण में जो सूक्ष्मता और प्रभाव क्षमता मिलती है वह इस काल के अन्य कवियों में प्रायः दुर्लभ है।

घनानन्द के सौंदर्यांकन में एक विशेष प्रकार की तल्लीनता या गहरी लिप्तता मिलती है। ये तटस्थ या वस्तुनिष्ठ दृष्टि से उसका वर्णन मात्र नहीं करते। स्वानुभूति की प्रबलता के कारण इनका द्रष्टा चित्त आलंबन की रूप माधुरी के साथ इस प्रकार घुल मिल गया है कि दोनों को एक दूसरे से अलग कर पाना प्रायः असंभव हो गया है। घनानन्द के सौंदर्य चित्रण की यह विशेषता इन्हें अपने समसामयिकों से नितान्त भिन्न कर देती है। स्वानुभूति की ठोस भूमि पर आधारित होने के कारण इनकी सौंदर्य-कल्पनाएँ क्रीड़ा मात्र न रहकर सौन्दर्य की पुनर्रचना करती हैं। इस तथ्य को एक उदाहरण द्वारा आसानी से समझा जा सकता है

अंग-अंग आभा संग द्रवित स्रवित ह्वै कै,
रचि रुचि लीनी सौंज रंगनि घनेरे की।
हँसनि लसनि आछी बोलनि चितौनि चाल,
मूरति रसाल रोम रोम छवि-हेर की।

लिखि राख्यौ चित्र यौ प्रवाह रूपी नैननि पै,
लही न परति गति ऊलट अनेरे की।
रूप को चरित्र है अनदघन जान प्यारी,
अकि धौं विचित्रताई मो चित चितेरे की।।'
—घनआनन्द ग्र थावली, पृष्ठ ६८/२११

यहाँ प्रिय का एक स्वानुभूत और भाव प्रवण छायाकन है। प्रेमी के चित्त न प्रिय के अग प्रत्यग की छटा के साथ घुल मिलकर, अपनी आतरिक सवदना से, उसके हँसन बालन आदि की आकपक क्रियाओ से युक्त और (सयाग काल मे) अपन रोम रोम स देखी गई रसपूण छवि का एक सुस्थिर चित्र अपने प्रवाह रूपी नेत्रा, अर्थात निरन्तर अश्रु प्रवाहित करने वाले नत्रो म वना रखा है। यह विलक्षण वपरीत्य—एक आर स्थिर चित्र और दूसरी ओर प्रवाह म उसका स्थित होना—चित्रकार (प्रेमी) की समझ मे नही आ रहा है। उसे दुविधा है कि प्रिय के सौदयगत चरित्र की किन्ही विशेषताआ के कारण एमा हुआ है या मरे चित्र कार चित्त की विलक्षणता के कारण। वस्तुत यहा चित्र और चित्रकार की एकतानता का सकेत है, जिसम प्रिय सौदय प्रेमी हृदय से रजित हाकर प्रस्तुत हुआ है। हृदय के राग रग से उरहा गया यह नितान्त व्यक्तिनिष्ठ चित्र पूरे रीतिकाल म यन्न दुलभ है। इस दृष्टि से घनानन्द और रीतिबद्ध कविया के अतर का समझन के लिए बिहारी का एतदविपयक एक उदाहरण पर्याप्त सहायक हा सकता है

लिखन बठि जाकी सबी गहि गहि गरब गरूर।
भये न केते जगत के चतुर चितेरे क्रूर।।
—बि० रत्नाकर, दा० ३४७

यहा एक का य रूढि पर आधारित अकुरित यौवना नायिका के क्षण क्षण वढन वाले सौदय का चित्रण है। यहा भी कवि-कल्पना का चमत्कार है, लेकिन यह कल्पना स्वानुभूति के ठोस धरातल पर आधारित न होकर बुद्धि के क्रीडा विलास पर आधारित है। अत पाठक को क्रीडा बुद्धि को चमत्कृत करने तक ही इसकी क्षमता भी सीमित है। इसके लिए कवि न एक चमत्कारपूण रूढ कल्पना का सहारा लिया है। अकुरित यौवना नायिका का यथाथ चित्र (शवीह) बनान के लिए कई चित्रकार एकत्र हो गए है। लेकिन जब तक व चित्र तैयार करत है, तब तक नायिका के सौदय म अपूव वद्धि हा जाती है। इसलिए सभी चतुर चित्रकार उसके सौदयहन्ता के रूप म क्रूर प्रतीत होते हैं। वस्तुत यहा सौदय के आन्तरिक प्रभाव का अकन न हाकर, उसकी मात्रागत वद्धि का सकेतित किया गया है। घनानन्द के सौदर्याकन म भी चमत्कार है लेकिन यह चमत्कार

भाव विधायक है, जो रूप की परिस्थिगत विशेषता और भावक के साथ उसके आन्तरिक सम्बन्ध को भी उद्घाटित करता है। बिहारी के चित्र तटस्थ चित्रकार हैं जब कि घनानन्द का चित्रकार स्वयं प्रेमी है और अपनी संयोग कालीन स्मृतियों का चित्र अपने मानस पटल पर अंकित किए हुए है। रूप या सौन्दर्य की इस आन्तरिक विशेषता के समर्थन के लिए एक दूसरा उदाहरण लिया जा सकता है

'रावरे रूप की रीति अनूप, नयो नयो लागत ज्यों ज्यों निहारिये।
त्यौं इन आँखिन बानि अनोखी अघानि कहूँ नहिं आन तिहारिये।'

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृ० १५/६१

यहाँ कवि ने रूपगत सौन्दर्य की वास्तविक प्रकृति का उद्घाटन किया है, जिसे समुचित रूप से समझाने के लिए संस्कृत के एक सौन्दर्यमर्मी कवि के इस कथन को सामने रखा जा सकता है— क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः। वस्तुतः वही सौन्दर्य (रूप) रमणीय है जो देखने वाले के लिए क्षण-क्षण नवीनता उत्पन्न करे। नयो नयो लागत ज्यों ज्यों निहारिये —के माध्यम से घनानन्द ने उसी रमणीय रूप का संकेत किया है। लेकिन सौन्दर्य का यह नित्य आकर्षण निरपेक्ष नहीं है, वह भोक्ता की सम्बन्ध भावना पर निर्भर करता है, जो प्रिय सौन्दर्य के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं संतोष ही नहीं प्राप्त करता। दर्शक और दृश्यमान रूप—दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध पर ही रूप के स्थायी आकर्षण की यह विशेषता आधारित है। घनानन्द ने अधिकांशतः एक सक्रिय भोक्ता के रूप में ही सौन्दर्य का अंकन किया है। फलस्वरूप उनके चित्रणों में सौन्दर्य के प्रभाव की ही अधिक व्यंजना मिलती है। ये नख शिख-वर्णन के बारीक विवरणों या रूढ़ि पर आधारित सादृश्य योजना में न जाकर दो चार आड़ी तिरछी किन्तु अत्यन्त भावोद्बोधक रेखाओं में बँधे सौन्दर्य चित्र प्रस्तुत करने में अपना सानी नहीं रखते। एक अनूठे सौन्दर्य चित्र के उदाहरण द्वारा इस तथ्य को आसानी से समझा जा सकता है

'झलकै अति सुन्दर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छ्वै।
हँसि बोलनि मैं छबि फूलन की बरषा उर ऊपर जाति है ह्वै।
लट लोल कपोल कलोल करैं कल कंठ बनी जलजावलि द्वै।
अंग अंग तरंग उठै दुति की, परिहै मनौ रूप अबै धर च्वै॥

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृष्ठ ५८५/२

'अत्यंत सुन्दर गौर मुख कानों तक खिंचे हुए लम्बे मस्त नेत्र, हृदय पर सौन्दर्य के फूलों की वृष्टि करने वाली हँसी, कपोलों पर क्रीड़ा करने वाली दो

चचल लटें, सु दर ग्रीवा म सुशोभित हाने वाली दो लडिया की मोती माल और अग प्रत्यग से उठने वाली शोभा की तरगें—सब मिलाकर ऐसा प्रतीत होता है कि सौन्दय अभी पृथ्वी पर टपक पडेगा।' इसम मुख, नेत्र, वाणी, हँसी, ग्रीवा, मुक्ता माल आदि का उल्लेख अवश्य हुआ है, लेकिन यह चित्रण रीतिकवियो के परिपाटी बद्ध नख शिख वणन से पयाप्त भिन्न है। यहा मुख नत्र, हँसी, लट, ग्रीवा आदि के रूप रग या आकार आदि को व्यक्त करन की ओर कवि की प्रवत्ति नही है, जसा कि प्राय रीतिबद्ध कवियो न परम्परागत उपमानो के माध्यम से किया है। यहा घनानन्द न सौन्दय म निहित लावण्य और काति के हृदय पर पडने वाले प्रभाव का ही अकन किया है। 'परिहै मनो रूप अब घर च्व'—इस अतिम चरण की पष्ठभूमि के रूप म ऊपर के तीना चरण आए है। 'अति सु दर' के द्वारा कवि न सौन्दय की परिपूणता, उसके लबालब भरे होने का सकेतित किया है। इसी सन्दभ म उसके छलककर टपकने की बात साथक होती है। दग के साथ 'छके' विशेषण अत्यन्त व्यजक है। इसम सतोष के साथ ही फलाव की स्थिति का भी बोध होता है। 'छवि फूलन की बरपा' पद भी अत्यत व्यजक है। हँसकर बोलन म—किंचित आघात से प्रफुल्लित पुष्पलता स पुष्पवष्टि का आशय सकेतित हुआ है। शरीर पर फूलो की वष्टि आह्लादजनक हाती है जिससे हृदय पर सौन्दय के फूलो की वष्टि के आनन्द का आसानी स अनुमान किया जा सकता है। पुष्पवष्टि प्रसन्नता की स्थिति मे की जाती है। इससे नायिका की प्रसन्नता का भी आभास मिलता है। फलस्वरूप उसकी हँसी का आह्लादजनकत्व द्विगुणित होकर नायक के हृदय पर पडता है। तीसरी पक्ति मे चचल लटो का कपोलो पर क्रीडा करना भी नायिका की एक विशेष भगिमा द्योतित करता है। द्वितीय पक्ति के हँसि बोलनि म से यह स्पष्ट है कि नायक से वह हस हँसकर बातें कर रही है। इससे लटो का चचल होकर हिलना स्वाभाविक है। इस प्रकार कवि न यहा सौन्दय का एक अत्यन्त गतिशील चित्र प्रस्तुत किया है।

शरीर के विभिन्न अगो के वणन की ओर भी घनानन्द की प्रवत्ति दिखाइ देती है। इस दष्टि से नेत्र भ्रू नासिका, ग्रीवा पीठ, उदर, नाभि, पिंडली, मोरवा एडी, पाव आदि के वणन विशेष उल्लेखनीय हैं। इन वणना का दखन मे यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि की दष्टि इन अगो के रूप रग के कथन की अपेक्षा प्रभाव-व्यजना की ओर अधिक है। इसलिए इनके यहा अग विशेष की अपेक्षा नायिका का भावभीना समग्र सौन्दय ही अधिक प्रत्यक्ष हुआ है

'लाजनि लपेटी चितवनि भेद भाव भरी,
लसति ललित लाल चख तिरछानि मैं।
छवि को सदन गोरो वदन, रुचिर भाल,
रस निचुरत मीठी मृदु मुसक्यानि मैं।

दसन दमक फैलि हियें मोती माल होति,
पिय सों लड़कि प्रेम पगी बतरानि मैं।
आनँद की निधि जगमगति छबीली बाल,
अंगनि अनंग रंग ढुरि मुरि जानि मैं॥'

—घनआनन्द कवित्त पृ० ४/१

लज्जा में लिपटी किन्तु रहस्यमय भावों से परिपूर्ण चंचल तिरछे नेत्रों की चितवन, छवि गृह के समान गोरे मुख, सुन्दर ललाट पर छिटकती हुई मोटी कोमल मुस्कान, प्रिय के साथ प्रेमपूर्वक वार्तालाप की मुद्रा में दिखाई देने वाले दाँतों की आह्लादकारी आभा, भावपूर्ण अंग संचालन आदि के माध्यम से नायिका के अंगों और उसकी आंगिक क्रियाओं का कवि ने अत्यन्त मादक और गतिशील चित्र प्रस्तुत किया है। वस्तुतः यह नृत्य लीन नायिका का स्वानुभूति रंजित चित्र है जिसे सुजान आदि वेश्याओं के नृत्य के रूप में कवि ने स्वयं राजदरबार में देखा था। वीणावादन, गायन, नृत्यादि की विभिन्न भंगिमाओं से उसका प्रत्यक्ष परिचय था। फलस्वरूप नृत्य की अनेक मुद्राओं के अत्यन्त भावपूर्ण एवं जीवन्त चित्र प्रस्तुत करने में घनानन्द को पर्याप्त सफलता मिली है। इसके लिए एक उदाहरण पर्याप्त होगा

'नीची नासापुट ही की उचनि अचंभे भरी,
मुरि के इचनि सौंन क्यों हूँ मन तें मुरै।
रूप लाड़ जोबन गरूर चोप चटक सों,
अनखि अनोखी तान गावत मिहीं सुर।
सहज हँसौंहीं छवि फबति रँगीले मुख,
दसननि जोतिजाल मोतीमाल सी दुरै।
सरस सुजान घनआनंद भिजावै प्रान,
गरबीली ग्रीवा जब आनि मान पै दुरै॥'

—घनआनन्द ग्रंथावली, पृ० ३२/९८

नृत्य में नासापुट की उठान गति के प्रत्यावर्तन अर्थात् उसका पीछे लौटना, एक तरफ रूठन की मुद्रा में अनोखी तान का महीन सुर में गायन तो दूसरी तरफ सहज मुस्कान से युक्त दंतपंक्तियों की शोभा—इन सबके बीच गर्वीली ग्रीवा का मान की मुद्रा में मुड़ना आदि भावभीनी एवं सरस क्रियाएँ मन और प्राण को आनन्द से सिंचित कर देती हैं। यहाँ नृत्य का अत्यन्त मनोरम और सजीव दृश्य प्रस्तुत हुआ है। घनानन्द ग्रंथावली के अन्तर्गत 'सुजानहित' के १२१, १२७, १३३ संख्यक छंदों में भी घनानन्द ने नृत्यलीन नायिका का अत्यन्त मनोहारी अंकन किया है।

सौन्दय-वणन म घनानन्द ने रीतिमार्गीय कविया की आलकारिक पद्धति का भी कहीं कहीं सहारा लिया है। वस्तुत रूप का प्रभाव ग्रहण-अन्कन म नेत्रों की महत्वपूण भूमिका होती है। अत इसके अकन म प्राय सादृश्य या सादृश्य विधान की आवश्यकता पड जाती है। पीठ कटि, वेणी उन्नत नासिक कान आदि के वणना म कवि न कहीं कहीं सादृश्य की चमत्कारपूण याजना भी की है। जैसे पीठ का प्रियतम क प्यार की शिक्षा दन क लिए काम देव द्वारा दी गयी पट्टी (तख्ती) उस पर पटी हुई वेणी का शाभा-सुमरु की सधि तटी या मान रूपी दुग की घाटी या फिर रसराज (शृगार) का प्रवाह कहना (घ०ग्र० पृ० ३४/१०३) आदि एक प्रकार स परम्पराभुक्त माग का ही अनुगमन है। लेकिन इस प्रकार के वणना म भी कवि न सादृश्य द्वारा कवल बाहरी रूपाकार साम्य की अपक्षा अगा के प्रभाव पर ही अधिक ध्यान रखा है। पग वणन क एक उदाहरण द्वारा इस तथ्य को अच्छी तरह समझा जा सकता है

'रति साँचे ढरी अछवाई भरी पिंडुरीन गुराइय पखि पग।
छबि घूमि घुर न मुरै मुरवान सा लाभी परो रस झूमि पग।
घनआनद एडिनि आनि मिड तरवानि तर तें भर न डग।
मन मरो महाउर चायनि च्व चुव पायनि लागि न हाथ लग॥

—घनानन्द ग्रथावली पृ० १४/३६

यहा पिंडली मोरवा एडी, तरवा (पगतली), महावर युक्त पाँव का रूपाकार न देकर कवि न उनकी आकषण क्षमता की ही अभिव्यक्ति की है। अपनी निजी अनुभूतिया क मिश्रण क कारण इनके परम्परायुक्त चित्रणा म भी प्रभाव कथन ही अधिक है। लकिन इस प्रकार क वणन घनानन्द की निजी विशेषता को नहीं उदघाटित करत।

वस्तुत घनानन्द का सौंदय बोध इनके लाक्षणिक विशषणा म लक्षित किया जा सकता है जा बिना किसी सादृश्य के उस सम्मूर्तित करत है। सौंदय के प्रति एक अघोर ललक और उस अपने अन्दर उतार लन की अशष अभिलाषा इनकी निजी विशेषता है। इस विशषता के कारण घनानन्द का सौन्दय चित्रण अपन समसामयिक कविया से भिन्न अपनी एक निजी पहचान कराता है।

७ सयोग-भावना

घनानन्द के प्रेम के स्वरूप की विलक्षणता के सदभ म हमने यह देख लिया है कि उसम एक विशेष प्रकार का असताप या अशाति लक्षित होती है। इनके प्रशस्तिकार ब्रजनाथ ने इस तथ्य को उदघाटित करते हुए लिखा है कि 'बिछुरें मिलें प्रीतम सांति न मान—' अर्थात जो वियोग और सयोग—दोना म ही एक-सा अशात बना रहे। वसे घनानन्द का काव्य मुख्यत वियोग प्रधान ही है लेकिन सयोग की तीव्र अनुभूति के बिना वियोग म गभीरता नही आती। इस दष्टि से विचार करें तो हम पाएँगे कि इनकी सयोग भावना भी अत्यन्त प्रबल रही है। इन्होंने स्थूल शारीरिक सुख, बाहरी आनदोल्लास, सहेट, मान मदन, नोक झोक, नर्मोपचार आदि के प्रसगा का त्याग कर मिलन मे प्राय दशनाभिलाषा के आधिक्य का ही चित्रण किया है, जिसम एक स्थायी असतोष की गहरी छाया मिलती है। सयोग और वियोग—दोनो की घोर अशान्ति के सम्बन्ध मे यह उदाहरण पर्याप्त बोधक है

> 'मुख चाहनि चाह उमाहन को घनआनद लाग्यौ रहैई झर।
> मन भावन मीत सुजान सयोग बन बिन कसे वियोग टर।
> कब हूँ जौ दई-गति सो सपनो सा लखौ तौ मनोरथ भीर भर।
> मिलिहू न मिलाप मिल तनको उर की गति क्यों करि न्यौरि परै॥
>
> —घनआनन्द ग्रथावली, पृ० २४/७२

यहा प्रेमी हृदय की विचित्र एव उलझी हुई स्थिति का चित्रण है। उसे वियोग की भाँति ही सयोग काल मे भी मिलन-सुख का रचमात्र अनुभव नही होता। एक तरफ ता प्रिय सुजान के सयोग के बिना वियोग नही टलता और वियोग काल म प्रिय-दशन क अभाव म नत्र निरतर झडी लगाए रहत हैं तो दूसरी ओर दवगति स यदि प्रिय स्वप्न की भाँति दिखाई भी दे गए तो अभिलाषाओ की ऐसी भीड लग जाती है कि उसे भर आँख देख पाना असभव हो जाता है। फलस्वरूप मिलन पर भी मिलन सुख की प्राप्ति नही होती। इस प्रकार घनानन्द के यहाँ सयोग क्षणिक मिलन मात्र है, सम्भोग की स्थायी दशा नही। इस सम्बन्ध म दूसरा उदाहरण है

> 'सुनि री सजनी! रजनी की कथा इन नन चकोरन ज्यौं बितई।
> मुख चन्द सुजान सजीवन को लखि पाएँ भई कछु रीति नई।

अभिलापनि आतुरताई घटा तब ही घनआनन्द जानि छ्इ।
सुविहाति न जानि परी भ्रम सी कब ह्व विमवासिनि बीति गई।।

—घनआनन्द ग्रथावली, प० ८५/२६८

रीतिबद्ध कवियो की सयोगिनी नायिकाओ के पास मिलनोपरान्त सखी-सहेलिया को सुनाए जान के लिए बहुत सारे सरस वृत्तान्त मिलेंगे, जि ह कहते हुए व थकती ही नही। इस उदाहरण म मिलनोपरान्त नायिका का सिफ अतृप्ति हाथ लगी है। रात्रि मिलन की कथा म नायिका अपने नत्रो की व्यथा ही बता पाती है। प्रिय के मुख का देखत ही अभिलापाओ की व्याकुल घटा इस प्रकार छा गई कि उसे कुछ पता ही नही लग पाया कि विश्वासघातिनी रात भ्रम की भाति कब बीत गइ। यह तीव्र दशनाभिलापा ही घनानन्द के यहा वियोग की भाति ही सयोग की भी प्रमुख विशेषता है। इसे समझने के लिए सयोग का एक स्पष्ट और अपेक्षाकृत अधिक मासल उदाहरण लिया जा सकता है

'पौढे घनआनद सुजान प्यारी परजक,
घरे धन अक तऊ मन रक गति है।
भूषण उतारि जग अगहि सम्हारि, नाना
रुचि के विचार सो समोय सीझी मति है।
ठौर ठौर ल ल राखै और और अभिलाखै,
बनत न भाखै तेई जान दसा अति है।
मोद् मद छाके चूमैं रीझि भीजि रस झूमैं,
गहै चाहि रह चूमैं अहा कहा रति है।।'

—घनआनन्द ग्रथावली, प० २३/७०

यहा शारीरिक सम्पक भी है, लेकिन भाति भाति की अभिलापाओ के माध्यम से मानसिक असतोष की इतनी तीव्रता व्यक्त हुई है कि शारीरिक लगाव प्राय दब गया है। नायक के अकम्य हान पर भी नायिका का मन रक जसा अनुभव कर रहा है। आभूपणादि उतार कर वह अपने अग प्रत्यग को मिलन के लिए तयार करती है, लेकिन भाति भाति की अभिलापाओ के कारण उसका मन अतप्ति स भर गया है। पूरी मस्ती, चुबन, आलिंगनादि क्रियाओ के बावजूद यहा किसी को नाक भौंह सिकोडने की जरूरत नही पडेगी। वस्तुत इस प्रकार के ऐंद्रिक सभोग चित्र घनानन्द के यहा विरल ही हैं। इनके सयोग की प्रमुख विशेषता 'सयोग म भी वियोग का बना रहना' ही है। प्रेम की प्रगाढता के कारण घनानन्द के यहाँ प्राय सयोग और वियोग के मध्य का अन्तराल लक्षित ही नहीं हो पाता। इस तथ्य को एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है

'डिग बैठे हू पठि रहै उर मैं घर क दुख को सुख दोहतु है।
दग-आग तें बैरी टर न कहूँ जगि जोहनि अतर जोहतु है।
घनाआनद मीत सुजान मिलें बसि बीच तऊ मति मोहतु है।
यह कैसो सजोगन बूझि परै जु बियोग न क्यौ हूँ बिछोहत है।।'

—घनआनन्द ग्रथावली, पृ० ३४, १०

प्रिय के निकट बैठे रहने पर भी नायिका के हृदय म दुख के लिए स्था
स्थान बनाकर वियाग सयाग सुख का दोहन करता है। यह शत्रु (वियोग) आँ
के सामने स कभी टलता ही नही प्रिय को देखने के समय बीच में से झाँकत
रहता है। इस प्रकार प्रिय सुजान से मिलने पर भी हमारे मध्य उपस्थित होक
मन को मूर्च्छित कर देता है।' अत नायिका यह समझ नही पाती कि 'यह कैस
सयाग है जिसम वियोग एक पल के लिए भी साथ नही छोडता।' इस प्रकार क
वियाग मिश्रित सयाग साहित्य के अन्तगत प्राय नही मिलता। मध्या आदि
नायिकाओ के सन्दभ म रीतिबद्ध कविया न सयाग म भी लज्जावश प्रिय को न
देख पाने का वणन अवश्य किया है, लेकिन घनानन्द के यहाँ सयोग म भी वियाग
के बने रहने की स्थिति उसस पर्याप्त भिन्न है। इस विशिष्ट स्थिति के कई
कारण हो सकते हैं। पहला ता यह कि घनानन्द की अधिकाश काव्य रचना अपनी
प्रेयसी सुजान स वियुक्त हान क बाद लिखी गई है। जब तक इन्होन लाकजीवन
म सन्यास नही लिया था और एक विरही के रूप म जीवन व्यतीत किया था, तब
तक के उनके सयाग चित्रणा म वियाग की एक काली छाया मँडराती हुई दिखाई
देती है। इस एक मनोवैज्ञानिक कारण माना जा सकता है। दूसरा कारण यह भी
हो सकता है कि राजदरबार म सुजान स प्रेम करत हुए भी घनानन्द का उसकी
निष्ठा के प्रति आशका रही हो। इन दोनो कारणा के साथ एक तीसरा कारण
यह हो सकता है कि प्रेम म प्रिय की महत्ता और अपनी लघुता की भावना सयोग
म आश्चय और आशका का सहज रूप से स्थान मिल गया हो। इन सभी तथ्यों
का कुछ उदाहरणा के माध्यम म आसानी से समझा जा सकता है

'दखे अनदेखनि प्रतीनि पेखियत प्यारे
नीठ न परति जानि दीठ किधौ छल है।

कहा वहौं आनद के घन जानराय हौ जू,
मिले हू तिहारे अनमिले की कुसल है॥'
—घनआनन्द ग्रथावली पृ० २०/६१

देखने पर भी न देखने की प्रतीति, प्रत्यक्ष म भी अप्रत्यक्ष का भ्रम और मिलन म भी अमिलभाव का पोषण प्रेमी की विरा ण मनोदशा का सूचक है। इस विलक्षणता के मूल म कवि का जीवनगत विषम प्रेम ही प्रतीत हाता है

हिलग अनोखी वयी हूँ धीर न धरत मन,
पीर-पूरे हिय मै धरक जागियै रहै।
मिले हूँ मिले को सुख पायन पलक एकौ,
निपट विकल अनुलानि लागिय रहै॥'
—घनआनन्द ग्रथावली, प० ५८७/६

प्रेम का यह पथ ही अनोखा है, जिसम एक क्षण के लिए भी मन को चन नही मिलता। पीडा से आपूरित हृदय म सयोग काल म भी बराबर आशका (धरक) बनी रहती है। इसलिए मिलन के समय भी एक पल के लिए भी सयोग सुख नही मिलता। यहा भी वियाग की आशका ही सयोग सुख स प्रेमी को वचित रखती है। इस सम्ब ध म रीतिमुक्त कवि ठाकुर ने एक महत्वपूण तथ्य का उद्घाटन किया है

'पर बीर मिल बिछुरे की बिथा मिलि क बिछुरै सोइ जानतु है।'

यहा सयोग और वियाग की व्यथा की अनिवचनीयता की ओर सकेत किया गया है। इसे 'सयुक्त होकर वियुक्त हान वाला ही जान सकता है।' वस्तुत यहा ठाकुर न सयाग के बाद वियोग की व्यथा का ही नही वरन वियोग के बाद सयोग की व्यथा की ओर भी सकेत किया है। वियोग के बाद सयाग मे भी हृदय प्रेम की पीडा स परिपूण होता है। घनानन्द के उक्त उदाहरण म इसी प्रकार क मिलन की आर सकेत। वियोग के उपरान्त सयोग की मनोदशा के लिए एक उदाहरण है

'उर गति ब्यौरिबे की सुदर सुजान जू को,
लाख लाख विधि सा मिलन अभिलाखियै।
बात रिस रस भीनी कसि, गसि गाम झीनी,
बीनि बीनि आछी भाति पाति रचि राखिय।

या कर ऐसा करती है। अन उसके रुदन, हाहाकार, सुधि-बुधि खोने आदि की क्रियाओ से किसी प्रकार के अपशकुन या अनाचरण की अभिव्यक्ति नहीं होती। सब मिलाकर यहा उसका अभिलाषाधिक्य और प्रिय की अनुपलब्धता की भावना ही प्रकट हुई है। वियोग के उपरान्त प्रिय-दर्शन पर प्राय इस प्रकार की मनोदशा का चित्रण घनानन्द ने किया है

'जो कहूँ जान लखे घनआनन्द तो तन नेकु न औसर पावत।
बीत वियाग भर अँसुवा, जु सयोग मे आ गेई देखन धावत॥'

—घनआनन्द ग्रथावली, पृ० ७०/२१४

नायिका दैववश प्रिय के दिखाई देने पर भी प्रिय को भर आँख देख नही पाती। इस अवसर पर आसू (आनन्दाश्रु) बाधा बनकर प्रिय का दर्शन का मार्ग अवरुद्ध कर देते हैं। पता नही किस वियोग से भरे हुए ये आसू सयोग काल मे प्रिय को पहले ही देख लेना चाहते हैं। वास्तविकता यह है कि आखो मे अश्रु आ जाने पर कुछ दिखाई नही देता। इसलिए सयोग काल मे भी नायिका प्रिय को देख नही पाती। वस्तुत यह दशा सयोग काल की है। मिलनोपरान्त तो स्थिति और अधिक करुणाजनक हो जाती है

सपने की सपति लौ भई है सलोनेमई,
मीत की मिलन-माद जानौ न कहा गयौ।

रामे आप ऊपर सुजान घनआनन्द पै,
पह के फटत क्यों रे हिय फटि ना गयौ॥

—घनआनन्द ग्रथावली, पृ० २३/६८

घनानन्द के यहा प्रिय मिलन स्वप्न की भाँति होता है। मिलन के बाद प्राप्ति भी स्वप्नवत ही होती है। जिस प्रकार स्वप्न मे मिली हुई सम्पत्ति स्वप्न के बाद स्वय गायब हो जाती है, उसी प्रकार प्रिय के मिलन के बाद उसका मिलन सुख पता नहीं कहा चला जाता है। इसलिए मिलन के बाद वेदना-विह्वल होकर वह कहती है कि 'पौ के फटत ही (सवेरा होते ही), यह हृदय भी फट जाता तो अच्छा था।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि घनानन्द की सयोग भावना साहित्य मे वर्णित सयोग की परम्परा से पर्याप्त भिन्न है। इनके यहा वियोग की भाति ही सयोग भी व्यथामूलक ही है। दर्शनाभिलाषा के आधिक्य, वियोग की समानान्तरता, प्रिय की उदासीनता, अपने जीवनगत विषम प्रेम आदि के कारण इनकी सयोग-भावना प्राय वियोग सयुक्त है। कही-कही सयोग मे अवसरोचित उल्लास या परम्परागत

भाग जाग जो कहूँ बिलोकै घनआनद तौ,
तो छिन की छावनि क लोचन ही साखिय।
भूल सुधि सातौ दसा बिलस गिरत गातौ,
रीझि वावरे ह्वै तब औरै कछू भाखिय॥'
—घनआनन्द ग्रथावली, प० २२/६७

विरहिणी प्रिय मिलन के लिए अनेक प्रकार की अभिलाषाएँ कर रही है। यह सोच रही है कि प्रिय के आगमन पर हृदय की गुत्थियों को उसके सामने खोलेगी। इसके लिए उसने रोष और प्रेम से मिश्रित अनेक बातों को चुन चुनकर नाराजगी के झीने परदे में अच्छी प्रकार सजाकर प्रकट करने के लिए तैयार कर रखा है। विरही की स्वाभाविक इच्छा होती है कि प्रिय के मिलन पर वह अपनी व्यथा को उसके सम्मुख रखे। लेकिन उसके मिलन पर प्राय इस सम्बन्ध में सोची गई सारी बातें भूल जाती है। क्योंकि प्रियमिलन से उत्पन्न प्रेमोन्माद में पूर्व स्मृतियाँ नवाब दे जाती हैं। यहाँ भी विरहिणी भाग्यवश (कभी कभार) जब प्रिय को देखती है तो उसका शरीर पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ, मन और बुद्धि (सातौ दसा) की स्थिति से शून्य होकर इस प्रकार बेसुध हो जाता है कि पिय के सम्मुख कुछ और ही बातें निकल पडती हैं। प्रेम में विह्वलता की यह स्थिति अत्यन्त स्वाभाविक है। लेकिन इस विह्वलता के कारण घनानन्द की विरहिणी प्रिय आगमन पर किए जाने वाले सामान्य आचरणों को भी प्राय भूल जाती है। काव्य शास्त्रीय परम्परा में प्रिय के आगमन पर अवसाद के वर्णन को साहित्याचार्यों ने वर्जित माना है। लेकिन घनानन्द में मिलन प्रसगो में भी प्राय एक विशेष प्रकार की पीडा या अवसाद की मनोदशा का चित्रण मिलता है। इसे एक उदाहरण द्वारा अच्छी तरह समझा जा सकता है

लहौं जान पिया लखि लाखन प्रान, पै वारिबे की अभिलाष भरौ।
सु कहौ किहि भाँति अनोखियै पीर, अधीर ह्वै ननिन नीर भरौ।
घनआनन्द कोजै विचार कहा, महारक लौं सोच सकोच ररौ।
चित चोपन चाह के चौवद में हहराय हिराय कै हारि परौं॥'
—घनआनन्द ग्रथावली प० २६/७९

विरहिणी प्रिय दर्शन से लाखो प्राणो की उपलब्धि जसा अनुभव करती है। किन्तु अपने प्राणो को उस पर न्योछावर करने की तीव्र अभिलाषा के अपूर्ण रहने पर दुखी होती रहती है। इस अनिर्वचनीय अनोखी पीडा में अधीर होकर वह निरन्तर अश्रु प्रवाहित करती रहती है। वस्तुत मिलन-वेदना की इस अनोखी पीडा के अश्रु प्रकारान्तर से आनन्दाश्रु ही हैं जो मिलनोचित आचार के विपरीत नहीं कहे जा सकते। हृदयगत तीव्र आकाक्षाओं के हाहाकार में नायिका अपनी सुध बुध

धा कर एमा करती है। अत उसके रुदन, हाहाकार, सुधि-बुधि खोने आदि की क्रियाओ स किसी प्रकार के अपशकुन या अनाचरण की अभिव्यक्ति नही होती। सब मिलाकर यहाँ उसका अभिलाषाधिक्य और प्रिय की अनुपलब्धता की भावना ही प्रकट हुई है। वियोग के उपरान्त प्रिय-दर्शन पर प्राय इस प्रकार की मनोदशा का चित्रण घनानन्द ने किया है

'जो कहूँ जान नय घनआनन्द तौ तन रकु न औसर पावत।
कौन वियोग भरे अँसुवा, जु सयोग म आ गर दरसन धावत॥'

—घनआनन्द ग्रथावली, पृ० ७०/२१४

नायिका दैववश प्रिय के दिखाई देने पर भी प्रिय को भर आँख देख नही पाती। इस अवसर पर आसू (आनन्दाश्रु) बाधा बनकर प्रिय के दर्शन का मार्ग अवरुद्ध कर देते हैं। पता नही किस वियोग स भरे हुए य आसू सयोग काल म प्रिय को पहले ही देख लेना चाहते हैं। वास्तविकता यह है कि आखो म अश्रु आ जाने पर कुछ दिखाई नही देता। इसलिए सयोग काल म भी नायिका प्रिय को देख नही पाती। वस्तुत यह दशा सयोग काल की है। मिलनोपरान्त की स्थिति और अधिक करुणाजनक हो जाती है

सपने की सपति लौ भई है मलोलेमई,
मीत कौ मिलन मोद जानो न कहा गयौ।

रासे आप ऊपर सुजान घनआनन्द पै,
पहु के फटत क्यौं र हिय फटि ना गयौ॥

—घनआनन्द ग्रथावली, पृ० २३/६८

घनानन्द के यहाँ प्रिय मिलन स्वप्न की भाति होता है। मिलन के बाद प्राप्ति भी स्वप्नवत ही होती है। जिस प्रकार स्वप्न मे मिली हुई सम्पत्ति स्वप्न के बाद स्वय गायब हो जाती है, उसी प्रकार प्रिय के मिलन के बाद उसका मिलन सुख पता नही कहाँ चला जाता है। इसलिए मिलन के बाद वेदना विह्वल होकर वह कहती है कि 'पौ के फटते ही (सवेरा होते ही), यह हृदय भी फट जाता तो अच्छा था।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि घनानन्द की सयोग भावना साहित्य म वर्णित सयोग की परम्परा से पर्याप्त भिन्न है। इनके यहाँ वियोग की भाति ही सयोग भी व्यथामूलक ही है। दर्शनाभिलाषा के आधिक्य, वियोग की समानान्तरता प्रिय की उदासीनता, अपने जीवनगत विषम प्रेम आदि के कारण इनकी सयोग भावना प्राय वियोग सयुक्त है। कही-कही सयोग के अवसरोचित उल्लास या परम्परागत

क्रिया कलाप भी इनमें मिल जाते हैं, लेकिन इसे इनकी विशेषता के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। भक्ति से सम्बन्धित अपनी शृंगारिक रचनाओं में कवि ने संयोग का स्थूल तथा विलास प्रधान रूप अवश्य स्वीकार किया है। लौकिक प्रेम की उन्मुक्तता भी वहाँ नहीं मिलती। भक्ति के क्षेत्र में वह एक विशेष धार्मिक सम्प्रदाय की परिपाटी में ही बँध कर चला है। इसलिए मिलन प्रसंगों में वहाँ वे कोई निजी विशेषता नहीं ला पाए हैं। भक्ति सम्बन्धी रचनाओं में भी अभिलाषा और सौंदर्य का आधिक्य अवश्य है, लेकिन लौकिक संयोग वाली व्यथा यहाँ गायब है। इस तथ्य को उनके पदों में आसानी से देखा जा सकता है

'रीझि रीझि मुख देखि रहे।
लाल लाडिली की छबि माहे चकित भए कछुव न कहे।
मोय माय मन खोय जात है रूप गहर की मिति न लहे।
आनँदघन पिय रसिक मुकुट मनि भाग निकाई दगनि चहे॥

—घनआनन्द ग्रंथावली, पद ६०४

यद्यपि पदों में भी शब्दावली प्रायः कवित्त सवैयों की ही है, लेकिन विषम प्रेम के लौकिक पक्ष का वैचित्र्य और लाक्षणिकता यहाँ कम मिलती है। नेत्र यहाँ भी रीझ बावरे हैं देखने की वैसी ही साध है मुग्धता और चकित भाव भी है, लेकिन विषमता या उदासीनता जन्य आशंका के अभाव में लौकिक प्रेम की पीर यहाँ नहीं मिलेगी। पदों में संयोग काल की मनोदशाएँ ही अधिक चित्रित है। इसमें उपालम्भ आदि उपस्थित प्रिय को निवेदित हैं जब कि कवित्त सवैया में आत्म निवेदन अनुपस्थित प्रिय को संबोधित है। फलस्वरूप शब्दावली की समानता के बावजूद दोनों में पर्याप्त अन्तर दिखाई देता है। इस समर्थन के लिए उपालम्भ का एक उदाहरण लिया जा सकता है

'हौ तुमसो एक बात बूझति हो, साची कहो।
मिले मोझ अनमिले से मोहन कैसी भाँति रहो।
उघरें हू अन्तरपट राखत अपने गुननि गहो।
चोपनि झूमि झूमि आनँदघन नित नए नेह नहो॥'

यहाँ भी मिले मोझ अनमिले' 'उघरें हू अन्तरपट', नित नये नेह नहो आदि प्रयोगों द्वारा प्रिय के निष्ठुर स्वभाव और उसकी उदासीनता का संकेत हुआ है लेकिन प्रिय की उपस्थिति के कारण इस उपालम्भ में लौकिक शृंगार का विरोध वैचित्र्य समाप्त हो जाता है। ये सारे प्रयोग कवित्त सवैया के हैं, किन्तु यहाँ इनकी ताजगी और ताप प्रायः समाप्त हो गया है।

८ विरह-भावना

घनानन्द के काव्य का मूल स्वर विरह या 'प्रेम की पीर' है। अपनी इस पीडा-परक दृष्टि के कारण ही इन्होंने सयोग में भी वियोग का अनुभव किया है। कवि के समकालीन और उसके काव्य की आन्तरिक प्रकृति के पारखी ब्रजनाथ ने अत्यन्त स्पष्टता के साथ इस तथ्य का उद्घाटन करते हुए लिखा है

समुझै कविता घनआनँद की हिय आखिन नेह की पीर तकी।'

या

प्रेम की चोट लगी जिन आखिन सोई लहै कहा पडित हाय कै।'

केवल काव्य मर्मज्ञ ब्रजनाथ ही नही, वरन कवि के मित्र और प्रशसक महात्मा हित वृन्दावनदास ने भी उसकी मृत्यु पर भाव विह्वल होकर श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए उक्त प्रवृत्ति को रेखाकित किया है

'बिरह सौ तायौ तन निबाह्यौ बन साचा पन,
धन्य आनँदघन मुख गाई सोई करी है।'

इससे स्पष्ट है कि घनानन्द ने केवल विरह व्यथा की कविता ही नही लिखी है, उनका जीवन भी विरह व्यथा की साक्षात प्रतिमा बन गया है। विरह से सतप्त शरीर और इस भावना के लिए अपने को न्योछावर कर देने की प्रतिज्ञा का निर्वाह —इस बात का प्रमाण है कि घनानन्द ने 'जो कुछ मुख से गाया है, वही किया' भी है। इसे और वस्तु परक बनाने के लिए कहा जा सकता है कि जो कुछ किया है वही गाया है।' अत इनकी 'कथनी और करनी' में एकरूपता मिलती है। इसलिए अधिकाश रीतिबद्ध कवियो की तरह ये प्रेम का नाटक खेलते हुए, उधार के आसू बहाने वाले न होकर अपनी व्यथा से रोते-कराहते दिखाई देते हैं। इस वास्तविकता को प्रकाशित करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है प्रेम की पीर ही लेकर इनकी वाणी का प्रादुर्भाव हुआ। प्रेम मार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक ब्रजभाषा का दूसरा कवि नही हुआ (हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ३२०)।

घनानन्द के 'प्रेम की पीर' का मूल आधार विषम प्रेम है जिससे इसमे कुछ ऐसी विशेषताओ का समावेश हो गया है, जो अन्य कवियो से इन्हे भिन्नता प्रदान करती है। आगे इन विशेषताओ को अलग-अलग समझने का प्रयास किया जाएगा।

(ख) विषम प्रेम की पीडा—विरह म विरही का व्यथित होना स्वाभाविक है। इसका सहज रूप है, उभय पक्ष म प्रेम की स्थिति। इसम भी वियोग जन्य व्यथा होती है, लेकिन एकपक्षीय (विषम) प्रेम की पीडा इससे पर्याप्त भिन्न होती है। विषम प्रेम म प्रेमी और प्रिय के मध्य एक विरोध भाव होता है, जहा प्रेमी एकनिष्ठ भाव स प्रेम करता है। *लेकिन प्रिय निरन्तर उसके प्रति उपेक्षा का भाव* प्रकट करता है। प्रेम का यह रूप समाज स्वीकृत न होने के कारण प्रेमी को एक विचित्र स्थिति म डाल देता है। इस स्थिति को कुछ उदाहरणा के माध्यम से आसानी स समझा जा सकता है

> तपति उसास औधि रुधियै कहा लौ दया,
>
> *बात बूझैं सननि ही उत्तर उचारियै।*
>
> उडि चल्यौ रग कैसे राखियै कलकी मुख,
>
> *अनलेखें कहा लौं न घूघट उघारिय॥'*
>
> —घनआनन्द कवित्त, ५१

एक तरफ प्रिय आगमन की अवधि की (झूठी) दिलासा म अपने प्राणो को *धय दिलाना और दूसरी ओर लोगो के प्रश्नो का सकेतो से उत्तर देना कब तक* सभव है। विरहिणी की दयनीय स्थिति को दखकर लोग पूछते हैं कि तुमन यह क्या दशा बना रखी ह ! इस पर उसे सही उत्तर न देकर टाल मटोल करना पडता है। लेकिन इस स्थिति का बहुत दिना तक छिपाया नही जा सकता। विरह क कारण अपने विवण होते हुए मुख का वह लोगा की दष्टि से अधिक समय तक छिपा नही सकती। घनानन्द की विरहिणी का वसे लोकापवाद की अधिक चिन्ता नही है। परन्तु प्रिय की निष्ठुरता क सदभ म उसके लिए लोकनिन्दा असह्य बन जाती है। सामान्य स्थिति मे लोकापवाद का सामना करन का उसम अपूव साहस है

> 'विष सी कथानि मानि सुधा पान करौं जान
>
> जीवन निधान ह्वै बिसासी मारि मति रे।
>
> जाहि जा भज सो ताहि तजै घनआनँद क्या,
>
> हति के हितूनि कहौ काहू पाई पति रे॥'
>
> —घनआनन्द कवित्त, ६०

यहा विषाक्त लोकापवाद को अमत समझकर पीने की बात स स्पष्ट है कि विरहिणी की वास्तविक पीडा प्रिय की उपेक्षा को लकर है। वह जिन परिस्थितियो म जीवन काट रही है, उसम एकतरफा प्रेम की पीडा ही प्रमुख है। *जब कभी कभार कोइ आत्मीय या पूण विश्वसनीय इस व्यथा को सुनने के लिए* आता है तो यह शतधा प्रवाहित होकर फूट निकलती है

'रैन दिना घुटिबो करै प्रान झर आँखियाँ दुखिया परना सी।
प्रीतम की सुधि अतर मैं कसक सखि ज्यौं पँसुरीनि मैं गाँसी।
चोचँद चार चवाइन के चहुँओर मच, बिरचै करि हाँसी।
या मरिय भरियै कहि कया सु परै जिन कोऊ सनेह की फासी।।'
—घनआनन्द कवित्त, ३६५

प्राणा का रात दिन घुटत रहना, दुखियारी आँखों का निरतर अश्रु प्रवाह, प्रिय की स्मृति का पसलिया म फासदार काँट की तरह कसकना आदि घोर शारीरिक मानसिक यातना के बीच चारा ओर बदनामी और जगहँसाई म जीवन बिताना कितना कठिन है। इस प्रकार खीचतान कर जीवन के दिन काटने की अनिवचनीय व्यथा से आकुल बिरहिणी का यह कह उठना कि 'कोई एस प्रेम की फासी म न पडे'—उसकी आतरिक मनोदशा को मूत रूप दे देता है। इसके साथ ही जब प्रेमी को यह पूण विश्वास हा कि प्रिय उसे नही चाहता या कभी भी उसके अनुकूल नही हा सकता तब वदना और अधिक दारुण हो जाती है

'घनआनँद प्यारे सुजान ! सुनौ जिहि भाँतिन हौं दुख सूल सहौं।
नहि आवनि-औधि न रावरी आस इत पर एक मी बाट चहौं।
यह दखि अकारन मेरी दसा कोउ बूझै तो ऊनर कौन कहौं।
जिय नकु बिचारि क न्हेु बताय हहा पिय ! दूरि ते पायँ गहौं।।'
—घनआनन्द कवित्त, २७३

वस्तुत यह स्थिति अत्यधिक दारुण है। प्रेम दो हृदया का अत्यन्त रागात्मक सम्बन्ध होता है। एक पक्ष की किंचित शिथिलता भी इसके लिए घातक हो सकती है। लकिन यहा एक पक्ष म मात्र शिथिलता ही नही, घार उपेक्षा भी है। विरहिणी अनुपस्थित प्रिय का सबोधित करते हुए कहती है कि 'न तो आपके आन की कोई निश्चित अवधि है और न ही इस प्रकार की उम्मीद ही की जा सकती है कि आप आएँगे। फिर भी मैं निरन्तर आपके आन का माग दख रही हूँ। मेरी इस अकारण प्रतीक्षा को दखकर कोई प्रश्न करेगा तो मैं उसे उत्तर क्या दू ? मैं दूर से ही आपके पाव पडती हूँ कि जरा सोचकर इसका उत्तर बता दें। वस्तुत यह एक विलक्षण वदना की मनोदशा है, जो मूलत एकतरफा प्रेम के कारण है। उभयनिष्ठ प्रेम म भी विरही को वेदना हाती है लेकिन वह इस आशा और विश्वास के सहारे जीवन काटता है कि प्रिय कभी आएगा। इसके साथ ही विरही इसम दूसरा को सहजभाव से अपना सहभागी बना सकता है जिससे अपनी व्यथा कहकर हृदय के भार को हलका कर सकता है। विषम प्रेम की अवस्था म वसा कर पाना भी सभव नही। इस विषमता के कारण प्रेमी का जीवन पीडा का जीवन बन जाता है। इस वैषम्यजन्य वेदना के अटपटेपन को घनानन्द ने अत्यन्त

ममस्पर्शी ढग से वाणी प्रदान की है

'अतर उदग दाह आँखिन प्रवाह आँसू
दखी अटपटी चाह भीगनि-दहनि है।
सोयबो न जागिबो हो हँसिबो न रोयबो हू,
खोय खोय आपही मैं चेटक लहनि है।
जान प्यारे प्राननि बसत प अनन्दघन,
विरह विषम-दसा मूक लौं कहनि है।
जीवन मरन जीय मीच बिना बन्यौ आनि
हाय कौन विधि रची नेही की रहनि है ॥'

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृ० ६३/१६६

विषम प्रेम की व्यथा के लिए कवि न प्राय विरोध मूलक विलक्षण क्रियाओ का सहारा लिया है। आग और जल, भीगना और जलना, जीना और मरना आदि परस्पर विरोधी वस्तुएँ तथा क्रियाएँ हैं जिन्हे विरहिणी एक साथ झेल रही है। कवि न 'जीवन के बिना जीन आर मृत्यु के बिना मरन के उल्लेख द्वारा 'नेही की रहनि' अर्थात विषम प्रम म ग्रस्त प्रेमी की स्थिति को अत्यन्त मार्मिक ढग से उजागर किया है। विरह विषम दसा मूक लौं कहनि है'—के द्वारा इसकी अनिवचनीयता का उदघाटित किया गया है। इस सार व्यापार म अपन को पूण रूप मे खो देन के बाद जा मिलता है, वह 'चेटक लहनि' है—अर्थात जादू की सी प्राप्ति है जो अतत झूठी और निरथक उपलब्धि के रूप म दिखाई दती है। वस्तुत यह विषमता पूणत फारसी प्रेम पद्धति जसी रही है। आरभ म सयाग और परस्पर विश्वास के कारण इसकी वियोग वेदना म एक भिन्न प्रकार की तीव्रता मिलती है जिसके केन्द्र म प्रिय की परवर्ती निष्ठुरता है। अत इसके प्रिय-पक्ष से किया गया विश्वासघात वेदना का एक प्रमुख कारण बन गया है

'कहिय सु कहा रहिय गहि मौन, अरी सजनी उन जसी करी।
परतीति द कीनी अनीति महा विष दीनो दिखाय मिठास डरी।
इत काहू सो मेल रह्यौ न कछू, उत खेल सी ह्व सब बात टरी।
घनआनँद जान सयान की खान, भुराई हमारेई पडे परी ॥

—घनआनन्द ग्र थावली, पृ० ८१/२४६

यहाँ विरहिणी व्यथा से विगलित होकर कह रही है कि हे सखी ! उन्होंने मेरे साथ जसा व्यवहार किया, उसे किस प्रकार कहा जाए ! इसके लिए तो मौन धारण कर लेना ही अच्छा है। पहले तो उन्होने मेरे हृदय म विश्वास पदा किया और फिर ऐसा धोखा दिया, जसे कोई मीठी डली दिखाकर बुलाए तथा पहुँचने

पर विष दे दे। उनके विश्वास के नाते इधर मैंने ससार के अन्य लोगो से नाता तोड लिया और उधर सारी बातें मेल की तरह हल्की फुल्की होकर उपक्षित हो गइ।' यहाँ प्रेमी क भोलेपन और प्रिय के विश्वासघात के माध्यम से कवि न दोना क स्वभावगत-वैषम्य को प्रस्तुत किया है।

उपर्युक्त विवेचन के बाद हम इसी निष्कष पर पहुँचते हैं कि घनान द की विरह भावना की प्रकृति उभयनिष्ठ प्रेम से भिन्न अनुभय निष्ठ प्रम पर आधारित हान क कारण अपन युग के अन्याय कवियो स पर्याप्त भिन है। इसम शृगार की अपक्षा करुण की अधिक व्यजना मिलती ह।

(ख) 'मौन मधि पुकार'—वस मानसिक वेदना अपन सामान्य रूप म भी अनिवचनीय होती है, जिसकी ओर कवियो न प्राय सकेत किया है। लेकिन विषम प्रम की वदना के रूप म घनानन्द ने उसकी विलक्षणता की ओर भी सकेत किया है। इस विलक्षणता को उन्होन 'मौन मधि पुकार' की सज्ञा दी है। पीछे अभी हमने देख लिया है कि घनानन्द के लिए विरह विषम दसा मूम लौ कहनि है।' लेकिन बात यही नही समाप्त हो जाती। यदि समझन वाला समझना चाहे तो गूग का सांकेतिक कथन भी समझ सकता है। यहा ता स्थिति और अधिक उलझी हुई है। प्रिय पक्ष स उपक्षा और आनाकानी प्रेमी की स्थिति को अत्यन्त दनीय बना दती है

'इतै अनदेखें देखिबेई जोग दशा भई,
त तो आनाकानी ही सौ बाध्यौ दीठि तार है।
तरें बहरावनि रई है कान बीच, हाय,
विरही विचारनि की मान मैं पुकार है।
—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृ० १२२/३६६

इधर बिना दखे देखन योग्य (दयनीय) स्थिति और 'उधर प्रिय द्वारा न देखने का हठ'—वेदना की भीषणता को अत्यन्त करुण बना देता है। इससे स्पष्ट है कि घनानन्द विषम 'प्रेम की पीर' को अनिवचनीय मानकर उसकी सावतिक अभिव्यक्ति की ओर प्रवत्त हुए हैं। इसे व्यक्त करन के लिए उन्होन प्रिय के कानो म बहानबाजी की रुइ और 'विरही की मौन म पुकार' का सकेत दिया है। यहा एक तरफ प्रिय व्यथा को सुनना नही चाहता तो दूसरी ओर प्रेमी उस सुनाकर अपनी ओर आकृष्ट करने के स्थान पर मौन की साधना या व्रत लेता है। वस गहराई से दखा जाए तो आतरिक व्यथा की वास्तविक स्थिति मौन म ही है, जिसे घनान्द ने अपन काव्य म एक विशिष्ट अवधारणा का रूप दिया है

मौन मिही बात है समझि कहि जानै जान,
अमी काहू भाँति को अचभै भरि प्यावई।

यह मौन मानै, पहचान कान नैन जावे,
बात की भिदनि मोहिं मारि मारि ज्यावई॥'

—घनआनन्द ग्रंथावली, पृ० १२६/४२३

मौन अत्यन्त रहस्यपूर्ण (महीन) कथन प्रणाली है, जिसे कोई बहुत समय दार या समझने की इच्छा रखने वाला ही जान सकता है। एक तो इसे कहा नहीं जा सकता और दूसरे यदि किसी प्रकार कहा भी जाए तो कोई मानने के लिए तैयार नहीं होगा। क्योंकि इसे वही पहचान सकता है, जिसके नेत्रों में ही कान हों अर्थात जो देखकर ही सारी व्यथा का अनुभव कर सके। इस तथ्य को और अधिक स्पष्ट करते हुए कवि ने लिखा है

पहचानैं हरि कौन, मो से अन पहचान कौं।
त्यौं पुकार मधि मौन, कृपा कान मधि नैन ज्यौं॥

—घनआनन्द कवित्त, २२

नेत्रों के मध्य कृपा रूपी कान के बिना 'मौन के मध्य स्थित पुकार' को नहीं सुना जा सकता। इसलिए विरहिणी ईश्वर से निवेदन करती है कि मेरी मौन में छिपी हुई पुकार को केवल आप ही देखकर सुन और समझ सकते हैं। क्योंकि आप ही ऐसे हैं जिनके नेत्रों में कृपा के कान हैं। लेकिन प्रिय की निष्ठुरता के संदर्भ में कृपा की कामना घनानन्द को अलौकिक की ओर ले गई है—इसे तो हम आगे यथास्थान देखेंगे, यहाँ इतना ही समझ लेना पर्याप्त है कि 'मौन' इनके लिए एक साधना के साथ ही अभिव्यक्ति का साधन भी है

'मौनहू सो देखिहौं, कितेक पन पालिहौ जू,
कूक भरी मूकता बुलाय आप बोलि है।

रुई दिएँ रहौगे कहा लौं बहराइबे की,
कबहूँ तो मेरिय पुकार कान खोलि है॥'

—घनआनन्द कवित्त, १०४

यहाँ मौन की क्षमता पर एक अपूर्व धैर्य और अडिग विश्वास प्रकट हुआ है। विरहिणी निष्ठुर प्रिय को चुनौती देते हुए कह रही है कि देखना है कि तुम अपने न सुनने की प्रतिज्ञा पर कब तक अटल रहते हो। मेरी यह पुकार भरी मौन (कूक भरी मूकता) तुम्हारी चुप्पी को तोड़कर ही दम लेगी।' इस कूक भरी मूकता का कारण प्रिय का उपेक्षा भाव ही है

'सुधि करैं भूल की सुरति जब आय जाए
तब सब सुधि भूलि कूकौं गहि मौन को॥'

—घनआनन्द कवित्त, २००

'प्रिय की उपेक्षा (भूल) की याद करने पर जब उसकी स्मृति सताने लगती है, तब मैं अपनी सुध बुध खोकर मौन म कूकन लगती हूँ।' मौन धारण कर कूकना यहा मौन के माध्यम से अपनी व्यथा का निवेदन करना है। 'मौन बखान' के रूप म घनानन्द न 'कूकभरी मूकता' के महत्व को इस प्रकार उदघाटित किया है

'आखिन मूदिवा वात दिखावत सोवनि जागनि बातहि पखि लैं।
वात सरूप अनूप अरूप है भूल्यौ कहा तू अलेखहि लेखि लैं।
वात की वात सुगात विचारिवा, सूछमता सब ठौर विसखि लैं।
ननि-काननि-बीच वसे, घनआनँद मौन बखान सु दखि ल ॥'

—घनानन्द ग्रन्थावली, पृष्ठ १३०/४२४

यहा कवि न नैना और काना के मध्य स्थित 'मौन के बखान' म वाणी (वात) की वास्तविक महत्ता का उद्घाटन किया है। वाणी के द्वारा उपेक्षा भाव (आख मूदना) का अच्छी तरह से उद्घाटन किया जा सकता है। इसके द्वारा अजान बन कर जानते रहने और जानबूझ कर अजान बन रहने की स्थिति का भी उदघाटन किया जा सकता है। वाणी का वास्तविक स्वरूप अनोखा और अत्यन्त सूक्ष्म (अरूप) है। इसकी महत्ता के सबध म हम किसी प्रकार का भ्रम नही होना चाहिए। क्योकि इसम अलक्ष्य (ब्रह्म) को भी लक्षित करने की क्षमता होती है। अपनी सूक्ष्म शक्ति के कारण वाणी की क्षमता सर्वव्यापी है। तात्पर्य यह है कि सूक्ष्म से सूक्ष्म और अनिवचनीय तथ्यो को भी वाणी द्वारा उदघाटित किया जा सकता है। कहना न होगा कि घनानन्द ने अपने काव्य म इस क्षमता का अत्यन्त कुशलता के साथ उपयोग किया है। अनिवचनीय स्थितियों की सांकेतिक अभिव्यक्ति की दृष्टि स निम्नलिखित उदाहरण अत्यन्त महत्वपूर्ण है

गतिनि तिहारी देखि थकनि मैं चली जाति,
थिर चर दसा कैसी ढकी उघरति है।
कल न परति कहूँ कल जो परति होय,
परनि परी हौं जानि परी न परति है।
हाय यह पीर प्यारे! कौन सुनै कासा कहौं,
सहौ घनआनन्द क्यों अन्तर अरनि है।
भूलनि चिन्हारि दाऊ हैं न हो हमारें या त
बिसरनि रावरी हमैं लै बिसरनि है।"

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृष्ठ १०८/३२६

अनिवचनीयता की अभिव्यक्ति म वाणी कितना की बिना ... अपनी क्षमता प्रकट कर सकती है—उक्त कविता म ... प्रस्तुत

हुआ है। गति (आदत) देखकर थकना और थकने में भी चलते रहना'—प्रिय की निष्ठुर करतूत को देखते हुए दुर्दशा में जीवन व्यतीत करने का 'मौन बखान' है। 'थिर और चर दसा' अर्थात् रुकने और चलते रहने की स्थिति का अस्पष्ट बने रहना, (ढकी उपरति) चेतनाशून्यता की द्योतक है। विरहिणी का यह कहना कि 'चाहे किसी को चैन पड़ता भी हो (कल जो परति हाय) लेकिन मुझे तो मालूम ही नहीं कि चैन पड़ना किसे कहते हैं।' इस प्रकार वह ऐसी स्थिति (परनि) में पड़ गई है कि उस पड़ी हुई विपत्ति (परति) का पता ही नहीं लग पाता। इस आंतरिक पीड़ा को न किसी से कहा ही जा सकता है और न कोई सुन ही सकता है। विस्मृति और स्मृति (भूलनि चिन्हारि) के साथ न होने से अर्थात् विस्मरण और स्मरण—दोनों की दशा से शून्य होने के कारण प्रिय की विस्मृति द्वारा आत्मविस्मृति के गर्त में डाला जाना विरहिणी की अत्यधिक व्याकुलता का परिचायक है। वस्तुतः इस प्रकार की सांकेतिक अभिव्यक्ति भी 'मौन बखान' का ही एक रूप है जिसे घनानन्द की रचनाओं में सर्वत्र देखा जा सकता है।

(ग) आत्मभर्त्सना—एकतरफा प्रेम, प्रिय की गुरुता और अपनी लघुता आदि के कारण घनानन्द की विरहिणी में कहीं कहीं आत्मग्लानि की भावना भी दिखाई देती है जिससे पीड़ित होकर वह आत्मभर्त्सना की ओर उन्मुख होती है। प्रथम दर्शनजन्य और रूपासक्ति की प्रधानता होने के कारण इनके यहाँ प्रेम के अंतर्गत नेत्र और हृदय—दोनों की महत्वपूर्ण भूमिका दिखाई देती है। सारे प्रेम प्रपंच की जड़ भी ये ही दोनों हैं। रूप लोभी नेत्र हृदय को गिरवी रख देते हैं और हृदय भी बिना कुछ सोच विचार इनके चक्कर में आ जाता है। वियोग की स्थिति में वर्णित नेत्रों की व्याकुलता और मन, जी, प्राण आदि के रूप में हृदय की विवशता का सर्वाधिक चित्रण किया है। विरही जब खीझ की दशा में होता है तो अपने नेत्रों या हृदय को ही सबसे अधिक कोसता है। रूप लोलुप नेत्रों की काली करतूत का बखान करते हुए विरहिणी कहती है

> 'जान के रूप लुभाय कै नैननि, बेंचि करी अधबीच ही लौंडी।
> फैलि गयी घर-बाहर बात, सुनीकै भई इन काज कनौड़ी।
> क्यौं करि थाह लहै घनआनँद, चाह नदी तट ही अति औंडी।
> हाय दई न बिसासी सुनै कछु है जग बाजति नेह की डौंडी॥'
>
> —घनआनन्द कवित्त, ३५

'इन नेत्रों ने प्रिय सुजान के रूप पर लुब्ध होकर सौन्दर्य में पूर्ण होने से पहले ही मुझे उसके हाथों बेच कर दासी बना लिया। यह खबर चारों ओर फैल गई जिसके कारण व्यर्थ ही मुझे अच्छी तरह बदनाम होना पड़ा। हाय विधाता, सारे संसार में मेरे प्रेम की मुनादी की जा रही है और उधर विश्वासघाती प्रिय

है, जो कुछ सुनता ही नहीं। वस्तुत इस वेदना के पीछे गहन 'दिखसाध' ही है, जो नेत्रो को प्राय व्याकुल किए रहती है। विरहिणी कभी कभार इन नेत्रो की व्याकुलता के माध्यम से भी अपनी व्यथा को उदघाटित करती है

'घेर घबरानी उबरानी ही रहति, घन-
आनँद आरति राती साधनि मरति है।

देखिय दसा असाध अँखिया निपटिनि की,
भसमी विथा प नित लघन करति है।

—घनआन द कबित्त, २६

यहा विरहिणी ने 'दिखसाध' के भयकर रोग स ग्रस्त अपन नेत्रा की विलक्षण व्यथा की ओर सकेत किया है। एक ओर भस्मक रोग (भसमी विथा) से ग्रस्त पेटटू (निपटिनि) आखें और दूसरी ओर उनका नित्य लघन काय (उपवास) ये दानो परस्पर विपरीत स्थितिया ह। आयुर्विज्ञान म भस्मक एक ऐसी बीमारी मानी गई है, जिसम रागी जो कुछ भी खाता है, सब उसके पेट म भस्म हा जाता है और भूख ज्यो की त्या बनी रहती है। उधर आखें स्वभावत पेटटू (अधिक खान वाली) हैं, अर्थात प्रिय को चाहे जितना भी दख कभी साध पूरी नहीं होती। लेकिन इधर प्रिय की अनुपस्थिति के कारण दशन से वचित हाकर उन्ह नित्य लघन (उपवास) करना पड रहा है। इस प्रकार कवि न नत्रो की व्याकुलता को अत्यन्त कुशलता के साथ प्रस्तुत किया है।

रूप-लोभी आँखो की भाति ही, विरहिणी रस लोलुप मन या प्राणो को भी कोसती है। सारी वेदना की जड वह इन्ह ही मानती है। प्रिय की अनुपस्थिति म उनका रहना उसे अनुचित प्रतीत हाता है

8619

क्यो धौ य निगोडे प्रान जान घनआनँद के,
गौहन न लागे जब वे करि बिज चले।

—घनआनन्द कवित्त ३१

'प्राणो पर विजय प्राप्त कर प्रिय के जाते समय य निगोडे (गाली) प्राण उनके साथ ही क्या नही चले गय —इस कथन म प्राणा के प्रति एक विशेष प्रकार की खीज प्रकट हुई है। व्याकुलता म कभी-कभी ता स्थिति यहाँ तक पहुँच जाती है कि विरहिणी मन का प्रताडित करते हुए उसकी यातना म ही किंचित सताप का अनुभव करन लगती है

'विष न बिसारयौ तन, क बिसासी आपचारयौ,
जान्यौ हुतौ मन त सनेह कछु खेल सा।

अब ताकी ज्वाल मैं पजरिबो रे भली भाँति,
नीके आहि, असह उदेग दुख सेल सो।

रुचि ही के राजा जान प्यारे यो आनन्दघन,
होत कहा हेरे रक, मान लीनौ मेल सो ॥'
—घनआनन्द कवित्त, ३७

मन को प्रताडित करती हुई विरहिणी कह रही है कि 'ऐ विश्वासघाती मन ! अपनी स्वेच्छाचारिता के कारण प्रेम म विरह के विष को ग्रहण कर तुमन सारे शरीर का विषाक्त कर दिया। लगता है कि तुमन प्रेम को कुछ खेल जसा समझ रखा था।' आगे वह अत्य त कटुता से व्यग्य करती हुई कहती है कि 'अच्छा हुआ, तुम्ह अपनी करनी का फल मिल गया। अब असह्य व्यथा के उद्वेग रूपी बरछे से भिद कर विरह की ज्वाला म अच्छी तरह जलो। तुम्हारी समझ म यह बात क्या नही आई कि प्रिय सुजान तो अपनी पस द के राजा, अर्थात परम स्वेच्छाचारी है। तुम जसे रक की तरफ जरा सा देख लेन से उनका क्या बिगडता है। लेकिन तुमने इस दखन को ही प्रेम मान लिया।' इसस स्पष्ट प्रतीत होता है कि विरहिणी अपनी पीडा म भी एक प्रकार से आत्मघाती आनन्द ले रही है। इस तथ्य को और अच्छी तरह समझने के लिए एक दूसरा उदाहरण भी लिया जा सकता है

'सूझै नहिं सुरझ उरझि नह गुरझनि
मुरझि मुरझि निसदिन डावाडोल है।

आगे न विचारयौ अब पाछें पछताए कहा,
मान मरे जियरा बनी को कसो मोल है ॥
—घनआनन्द कबित्त, १९३

अपने मन को सम्बोधित करती हुइ नायिका कह रही है कि 'प्रेम की अत्य त उलझनपूण गुत्थी म फँसकर तुम्ह उसस मुक्त होन का कोई उपाय नही सूझ रहा है। विरह के आघात से मूर्च्छित होकर तुम्ह निरतर व्याकुलता म रहना पड रहा है। इस सम्ब ध म प्रेम करन से पूव तो तुमन कोई विचार किया नही, अब पश्चा ताप करन का कोई लाभ नही। अत म वह अत्य त कटु व्यग्य करती हुई कहती है कि ऐ मरे मन ! अब तुम मान लो कि इस व्यापार म तुम्ह कमा मोल चुकाना पडा। अथात अपना सब कुछ चुका देन के बाद तुम्ह मिला क्या ? वस्तुत आँखो और मन को इस प्रकार वासना प्रकारा तर स आत्मभत्सना ही है

घनानन्द की विरहिणी म पीडा के प्रति एक विशप प्रकार का लगाव भी दिखाई देता है। अत रात दिन कष्ट सहन करते हुए भी प्राण पीडा स मुह नही मोडते

'सुनी है क नाही यह प्रगट कहावति जू
काहू कलपाय है सु कस कलपाय है।'

—घनआनन्द कवित्त, ७

इसम प्रिय के प्रति क्षोभ नहीं, वरन उसके अमगल का भय अधिक है। वह अपन मन को तो यह कहकर सात्वना दे लेती है कि—

'ति है यो सिराति छाती तोहि वैं लगति ताती,
तेरे बाट आयो है अँगारनि पैं लोटिबो।'

—घनआनन्द कवित्त, ५६

लेकिन अपनी वेदना के लिए अपना भाग्य दोष मानते हुए भी उसे इस बात की चिन्ता है कि उसके प्राणात के बाद लोग प्रिय को हत्यारा न समझ बठें

हेत खेत धूरि चूर चूर ह्वै मिलगो तब
चलैगी कहानी घनआनँद तिहारे की।'

—घनआनन्द कवित्त, ५३

अर्थात् मेरी मत्यु के बाद लाग तुम्हारी करनी की निन्दा करेंग। वस्तुत प्रेम की चरम स्थिति पर पहुँचकर प्रेमी को कुछ भी प्राप्त करने की कामना नही रह जाती। स्वय दु ख सहन कर भी वह प्रिय की निरतर मगल कामना करता रहता है। घनानन्द का प्रेम भी निष्कामता के इस उत्कर्ष बिन्दु तक पहुँचा हुआ है। इसे निम्नलिखित उदाहरण के माध्यम से अच्छी तरह समझा जा सकता है

'इत बाट परी सुधि, रावरे भूलनि, कस उराहना दीजिय जू।
अब तौ सब सीस चढाय लई, जु कछू मन भाइ सुकीजिय जू।
घनआनद जीवन प्रान सुजान, तिहारिय बातनि जीजिय जू।
नित नीके रहौ तुम्ह चाड कहा, पै असीस हमारियौ लीजिय जू॥

—घनआनन्द कवित्त, ६८

यहा ता उलाहना दने की भी स्थिति नही है। क्योकि विधाता द्वारा किए गए बँटवारे म प्रेमी के हिस्स म निरन्तर याद करत रहना और प्रिय के हिस्से म सहज रूप से भूलना आया है। विरहिणी का जो कुछ भी मिला है उसे स्वाभाविक रूप स स्वीकार कर लिया है और अपन को प्रिय के प्रति पूणत समर्पित कर दिया है। लेकिन प्रिय को वह इतना अवश्य बता देना चाहती है कि तुम मेरे प्राणो के प्राण हो और तुम्हारी ही चर्चा म मैं जी रही हूँ अर्थात मेरे जीवन का अन्य कोई औचित्य नही है।' अन्त म उसका यह कथन कि यद्यपि तुम्हे जरूरत नही है, फिर

भी निरतर कुशलपूर्वक रहो—मरे इस आशीर्वाद को भी स्वीकार करा। प्रिय निष्ठुर और विश्वासघाती है—इस विश्वास के बावजूद विरही के प्राण केवल इसलिए नहीं निकल पा रह हैं कि प्रिय का कुशल समाचार मिल जाए तो वे सतोषपूर्वक निकलें

'बहुत दिनानि की अवधि आस पास परे
खरे अरबरनि भरे हैं उठि जान को।
कहि कहि आवन सदसो मनभावन को,
गहि गहि राखत हैं दै द मनमान को।
झूठी बतियानि की पत्यानि ते उदास ह्वै कै,
अब ना घिरत घनआनद निदान को।
अधर लग हैं आनि करि क पयान प्रान,
चाहत चलन य सदशो लै सुजान को।'

—घनआनद कवित्त ४४१

प्रस्तुत कवित्त म विरह की मर्मातक वदना का चित्रण हुआ है। इस कवित्त के सम्बन्ध म यह किवदन्ति भी है कि घनानद न मरत समय अपन रक्त से इसकी रचना की थी। वस अपनी प्रगाढ प्रेम साधना का उन्होंने जीवन के उत्तरार्द्ध म लोकोन्मुख स ईश्वरोन्मुख अवश्य कर लिया था, लकिन लगता है कि जीवन क अतिम क्षणा म सुजान पुन उनके स्मृतिपटल पर उभर आयी है। वदना विगलित होकर कवि न लिखा है कि 'बहुत दिना स प्रिय के आगमन की अवधि की आशा क पाश म बँधे रहन के बाद अब अत्यधिक व्याकुल होकर प्राण चलन के लिए निकल पडे हैं। आज तक मैंन प्रिय आगमन के सन्देश दे दकर, समुचित रूप स समझा-बुझाकर सम्मानपूर्वक इन्ह रोका है। लेकिन झूठी वाता म विश्वास स विमुख होकर अतत इन्होंन मरे सारे प्रयत्न विफल कर दिए है। शरीर स निकलकर प्राण अधर मे आ लग है। प्रिय सुजान के कुशल समाचार की प्रतीक्षा म य वहाँ रुके हुए ह। उसक मिलते ही चल पडेंगे।' यहाँ किसी प्रकार की भौतिक या शारीरिक आकाक्षा से रहित विरही आत्म विस्मृति की दशा म भी प्रिय की मगल कामना स प्रेरित है।

(ड) दन्यजनित करुणा भाव—प्रगाढ प्रेम मे विरह क अन्तगत दन्य एव निरवलबता की स्थिति किसी न किसी रूप म अवश्य विद्यमान रहती है। लकिन एकनिष्ठा या विषम प्रेम के अन्तगत यह दैन्य निरुपायता की दशा तक पहुँचकर करुण भाव की सृष्टि करन लगता है। घनानद की विरह भावना क अन्तगत हम इस दशा क चित्र अधिक मिलत हैं। इस अच्छी तरह समझन के लिए कुछ उदाहरण लिय जा सकते हैं

१ 'अकुलानि के पानि परयौ दिन राति सु ज्यौ छिनकौ न कहूँ बहर।
भए कागद नाव उपाव सब, घनआनन्द नेह नदी गहर।'
—घनआनन्द कबित्त, ५२

२ 'क्यौं करि जितैयै, कस कहा धौं रितय मन,
बिना जान प्यारे कब जीवन तें चूकिय।
बनी है कठिन महा मोहिं घनआनद यौ,
मीचौ मरि गई आसरो न जित ढूकिय ॥'
—घनआनन्द कबित्त, ६२

३ 'मग हेरत दीठि हिराय गई, जब तें तुम आवनि औधि बदी।
कब आयहौ औसर जानि सुजान, बहीर लौं बस तो जाति लदी।'
—घनआनन्द कबित्त, १६३

४ 'तेरी बाट हेरत हिराने औ पिरान पल,
थाके ये बिकल नना ताहि नपि नपि रे।
जीबे तें भई उदास तऊ है मिलन आस,
जीवहि जिवाऊँ नाम तेरो जपि जपि रे ॥'
—घनआनन्द कबित्त, १०६

इन सभी उदाहरणा म एक घनीभूत विवशता का भाव प्रकट हुआ है। पहले उदाहरण म व्याकुलता और अधीरता उस सीमा तक पहुँची हुई दिखाई देती है जहा कि प्रेम क इस धीर पथिक द्वारा प्रेम की गहराई को पार पान क लिए किए गए सारे उपाय निरथक सिद्ध हो जात है। दूसरे उदाहरण म विवशता की उस स्थिति का चित्रण है, जिसम मरना भी अपने वश म नही रह गया है। तीसरे उदाहरण म एक आतुर प्रतीक्षा है, जिसम सनिक साज सामान (बहीर) की तरह आयु के लाद फानकर वापस जान की चिन्ता से विरहिणी ग्रस्त है। चाथ उदाहरण म आतुर प्रतीक्षा म नना के थकने और अपन जीवन स उदास होन पर भी विरहिणी मिलन की आशा लिय हुए है। एकतरफा प्रेम की पृष्ठभूमि म इस प्रकार की विवशताजन्य वेदना करुणा भाव की सष्टि करती है। आत्म निवदन क कारण यह करुणा भाव और अधिक द्रवीभूत करने वाला बन गया है

१ तब ह्वै सहाय हाय कैसें धौ सुहाई एसी,
सब सुख सग ल बिछोह दुख द चले।

अति ही अधीर भई पीर भीर घेरि लई
हेली मनभावन अकली माहि क चल ॥
—घनआनन्द कबित्त, ३१

२ 'एमो वडी घनआनँद वेदनि, दया उपाय तें आव तँमारो।
हौं ही भरो अक्ली कहो कौन सो, जा विध होन है साँझ सवारो॥'
—घनआनन्द कवित्त, ६२

यहाँ विरही हृदय की वास्तविक वदना को कवि ने वाणी प्रदान की है। पहले उदाहरण मे प्रिय की अनुपस्थिति म विरहिणी को सारी दुनिया से कट जान और नितान्त अकेली हो जान की व्यथा व्यजित हुई है। वह कहती है कि प्रिय जात समय सार सुखो को बटोरकर अपन साथ लेता गया और उसके बदले म उसे वियाग की व्यथा सौंप गया। पीडा की भीड ने उसे घेरकर बुरी तरह व्याकुल कर दिया। अत म उसका यह कथन ह सखी ! प्रिय मुझे अकेली करके चल गए'—उसकी आन्तरिक मनोदशा की अत्यत मार्मिक अभिव्यक्ति करता है। यहाँ अकेलेपन म केवल प्रिय से ही अलग होने की स्थिति नहीं है वरन सारी दुनिया स अलग हो जान की वदना है। दूसरे उदाहरण म वेदनाधिक्य को बडे ही सांकेतिक ढग से व्यक्त किया गया है। 'जा विध होत है साझ सवारो (सध्या प्रात)' उसे 'हौं ही भरो अक्ली' के माध्यम से विरहिणी न अपनी मौन व्यथा को मुखर कर दिया है। मौन को मुखरित करने की इस पद्धति पर घनानन्द का पूर्ण अधिकार था। स्थान स्थान पर आह, हाय, अरे, दैया, अहो र आदि शोक और आश्चर्यसूचक शब्दों के अत्यन्त का यात्मक प्रयोग द्वारा ता कवि न इस काय का सम्पन्न किया ही है, साथ ही मौन का सहारा लेकर भी इसे सम्पादित किया है

'जो दुख देखति हौ घनआनद रैनि दिना बिन जान सुततर।
जानै वेई दिन राति, वखाने तें जाय पर दिन रात को अतर॥'
—घनआनन्द कवित्त, ४३

विरहिणी का यह कथन कि प्रिय के बिना रात दिन म जो दुख दख (झेल) रही हूँ, उस व रात और दिन ही जानते हागे, वे ही इसके साक्षी है। उसका वखान करन पर उसकी वास्तविक और कथित स्थिति मे जमीन आसमान का अन्तर आ जाएगा।' घनान द न विरही की व्यथा को प्राय इसी पद्धति से सकलित किया है।

परम्परागत पद्धति के विरह वणन म अभिलाषा, चिन्ता, गुणकथन, स्मृति मूर्च्छा, उन्माद आदि विभिन्न मनोदशाओ का सहारा लिया जाता है। रीतिकाल के रीतिबद्ध कवियो ने वियोग-वर्णन म इन मनोदशाओं के लक्षणबद्ध चित्रण प्रस्तुत किए हैं। घनानन्द म इसका सवथा अभाव है। वसे इन्होंने भी स्मृति, चिन्ता, अभिलाषा, उन्माद, मूर्च्छा आदि मनोदशाओं का वियोग वणन म पूरा सहारा लिया है, लेकिन इन्हें शास्त्रीय लक्षणबद्धता से प्राय मुक्त रखा है। विरहताप, कृपता, वैवर्ण्य आदि के चित्रण की ओर भी इनकी दृष्टि गई है, लकिन

इन अवस्थाओ की ऊपरी नाप जोख की अपेक्षा, इनके माध्यम से आन्तरिक व्याकुलता को उदघाटित करने का प्रयास ही इनमे अधिक मिलता है। इसे एक उदाहरण द्वारा अच्छी तरह समझा जा सकता है

'अतर आच उसास तच अति, अग उसीज उदेग की आवस।
ज्यौ कहलाय मसोसनि ऊमस, क्यौं हू कहूँ सु घर नहिं थावस।।'

—घनआनन्द कवित्त, २४

यहा अतर की आच बाहर वाला या निकटवर्तियो को न जलाकर केवल उच्छवास को गरम करती है और उद्वेग की ओस (हलका ताप) से अपने ही अग तपत (उसीजै) हैं। ममोस (टीस) की गर्मी (उमस) से जी (मन) मुरझाता हुआ अधीर या व्याकुल हो जाता है। वस्तुत वेदना की आच म तपती हुई विरहिणी महृदय के अन्दर भी वेदना उत्पन्न करती है। वेदना की सघनता घनानन्द के यहाँ रीतिबद्ध कवियो की भाति विरहिणी को करुणा की विलासपूर्ण क्रीडा का क्षेत्र नही बनने देती। वह वास्तविक करुणा की मूर्ति बनकर हमारे सामने उपस्थित होती है

'हियै मैं जु आरनि सुजारनि उजारति है,
मारति मरोर जिय डारनि कहा करौं।
रसना पुकारि कै बिचारि पचि हारि रहै
कहै कसें अकह उदग रुँधि क मरौं।
हाय कौन बेदनि बिरचि मेरे बाट कीनी,
निघटि परौं न क्यौं हूँ ऐसी बिधि ही गरौं।
आनन्द के घन हौ सजीवन सुजान देखौ,
सीरी परि सोचनि अचम्भे सो जरौ भरौं।

—घनआनन्द कवित्त, ४६

'हृदयस्थ वेदना अन्त करण को जलाते उजाडते हुए मरोड कर प्राणो को मारे डाल रही है। बेचारी जिह्वा पुकार पुकार कर थक गई है लेकिन अकथनीय वेदना स्पष्ट नही कर सकी है। प्रकटीकरण के अभाव म व्याकुलता से अवरुद्ध होकर मैं भीतर ही भीतर मर रही हूँ। विधाता ने पता नही, कैसी वेदना मेरे भाग्य म लिख दी है जिससे तिल तिल करके इस प्रकार गल रही हूँ कि पूरी तरह मर (समाप्त) भी नही पाती। अन्त म प्रिय सुजान को सम्बोधित करते हुए विरहिणी कहती है कि सोच क मारे ठण्डी पडती हुई मैं आश्चय से जलते हुए दिन काट रही हूँ।' इसम व्यक्त विवशता व्याकुलता दैन्य आदि पाठक को करुणाभिभूत कर देते हैं। प्रिय की निष्ठुरता और प्रेमी की एकनिष्ठता इस

करणा भाव को और अधिक तीव्र करती हैं। इस तथ्य को जब सीधी और सहज शब्दावली म कवि प्रस्तुत करता है ता यह और भी हृदय द्रावक हा जाता है

> 'पूरन प्रेम का मत्र महापन, जा मधि सोधि सुधारि है लेख्यो।
> ताही के चारु चरित्र विचित्रनि, यो पचि कै रचि राखि बिसेख्यो।
> ऐसा हिया हित पत्र पवित्र, जु आन कथा न कहूँ अवरेख्यो।
> सो घनआनन्द जान, अजान ला, टूक किया पर बाचि न देख्यो।।'
>
> —घनआनन्द कवित्त, ६७

यहा विरहिणी न अपन दृढ और पवित्र प्रेम के स दभ म प्रिय की निष्ठुरता की अत्यन्त मार्मिक अभिव्यक्ति की है। वह अपन हृदय रूपी पवित्र प्रेम पत्र की चचा करते हुए कह रही है कि 'उस पत्र म प्रिय के सुन्दर और मोहक चरित्र को श्रमपूवक सकल्प की पूण दढता के साथ प्रेम के मत्र क रूप म अकित किया गया था। अर्थात मेरे हृदय म कभी किसी अन्य की कामना की छाया तक भी नही पडी थी। उस हृदय रूपी पवित्र प्रेम-पत्र को प्रिय सुजान न पढकर देखने स पहले ही एक अनभिज्ञ की तरह फाडकर फेंक दिया।' 'अजान लौ टूक कियौ' म जानत हुए भी अजान की तरह टुकडे-टुकडे करना, अथात निममता से फाडकर फेंक दन का भाव निहित है। इसके साथ 'बाँचि न देख्यौ (दखना भी गवारा नही हुआ) से प्रिय के उपेक्षा भाव को सकेतित किया गया है।

इस प्रकार हम दखत है कि विरह भावना के अन्तगत दैन्य एव निरुपायता जनित करुणा भाव को कवि न बडी ही सफाइ के साथ प्रस्तुत किया है। वस्तुत एकतरफा प्रेम की यह एक अत्यन्त स्वाभाविक स्थिति है। इस स्थिति तक पहुँचा हुआ प्रेमी ही एकतरफा प्रेम का एकनिष्ठता से निवाह कर सकता है।

(च) दृढ़ता और साहस—प्रेम माग के अत्यन्त धीर पथिक घनानन्द न नियोग के अन्तगत दैन्य, विवशता, निरवलम्बता आदि करुणोत्पादक मनोदशाओ का समावेश करते हुए भी एक अपूव दढता और साहस का परिचय दिया है। वस्तुत इनक यहाँ प्रेमोन्माद म प्रेमी इस बात की परवाह ही नही करता कि प्रिय भी उसे प्रेम करता है या नही। इसलिए घनानन्द के काव्य म आत्मदान की भावना अत्यन्त प्रबल है, जा प्रेम को साहसिक पथो की ओर अग्रसर करती है

> 'चाहो अनचाहो जान प्यारे पै आनन्द घन,
> प्रीति रीति विषम सु रोम रोम रमी है।'
>
> —घनआनन्द कवित्त ३३

वस्तुत लोक और शास्त्र दानो ही दष्टियो स इस प्रकार के विषम प्रेम को उचित नही माना गया है। लेकिन इन बधनो का उल्लघन कर घनानन्द का प्रेमी

अपना प्रेमादश स्थापित करता है। वदना और पीडा की कसक से इसका रोम रोम भरा हुआ है। उसके प्रत्यक उच्छवास स निराशा का हाहाकार सुनाई पडता है। लेकिन इस साधना माग स उसम कही भी विचलन नही दिखाई दता। निराशा प्रकारान्तर स दृढता प्रदान करती हुई उस एक कठोर साधना म प्रवत्त कर देती है

'आसा गुन वाधि क भरोसो सिल धरि छाती,
पूरे पन सिन्धु मैं न बूडत सकायहौं।
दुख दव हिय जारि अन्तर उदग आंच,
रोम राम त्रासनि निरतर तचाय हौं।
लाख-लाख भातिन की दुसह दसानि जानि,
साहस सहारि सिर आरे लौ चलायहौं।
ऐसें घनआनन्द गही है टेक मन माहि,
एरे निरदई ! तोहि दया उपजायहौ॥'

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृष्ठ ८५/१६६

इस कवित्त म विरहिणी की ओर से परम साहस और दृढ निश्चय का परिचय दिया गया है। सूफी साधना से प्रभावित फारसी प्रेम पद्धति की एक स्वस्थ झाकी यहा प्रस्तुत हुई है। अत्यन्त निदय प्रिय के हृदय म दया उत्पन्न करने के लिए, उसकी आखा के सामने डूब मरन या विरह वदना की यत्रणा झेलते हुए अपन को मिटा दन का दढ निश्चय फारसी प्रेम-पद्धति का आदश है। यदि प्रेमी को यह विश्वास हो जाए कि उसकी मत्यु के बाद प्रिय की आखा म आँसू के दो बूद या जिह्वा पर सहानुभूति के दो शब्द आ जाएँगे तो वह प्रस नतापूवक अपने प्राणा का उत्सग करने को तयार हो जाता है। यहाँ विरहिणी आशा रूपी रस्सी से भरोसा रूपी शिला को छाती पर बाध कर प्रेम क प्रतिज्ञा रूपी समुद्र म डूबने के लिए निभय होकर व्रत लेती है। यही नही, वरन दु ख की दावाग्नि म हृदय को जलाकर आन्तरिक व्यथा की त्रासदायक आच म अपने सम्पूण शरीर को निरन्तर तपाने का निश्चय भी करती है। 'लाख लाख भाति की विरह दशाओ को अच्छी तरह समझ कर उन्ह साहसपूवक झेलना'—कुछ वैसा ही है, जस अनक साधना पद्धतिया का ज्ञान प्राप्त कर ब्रह्म के साक्षात्कार का प्रयास। प्रेम और भक्ति—दोनो ही क्षेत्रो के लिए यह साधना फारसी साहित्य की देन है। रीतिकाल क अन्यान्य कवियो पर फारसी साहित्य का स्पष्ट प्रभाव देखन को मिलता है। लेकिन उसके विषम या एकतरफा प्रेम की गम्भीरता की वास्तविक अभिव्यक्ति घनानन्द म ही मिलती है। इस प्रकार की प्रतिज्ञा 'एरे निरदई ताहि दया उपजाय हौ'—लौकिक शृगार क चितेरो म सिफ घनान द की ही विशेषता है। विरहिणी प्रिय के सम्मुख

चुनौती प्रस्तुत करते हुए कहती है

> 'मौन हूँ सो दखिहौं, कितेक पन पालि हौ जू,
> कूम भरी मूकता बुलाय आप बालि है।
>
> रई न्एँ रहोगे कहा लौ बहराइबे की,
> कबहूँ तौ मेरियै पुकार कान खोलि है।'

—घनआनद ग्रथावली, पृष्ठ ६३/२८६

वदना की शक्ति पर इतना दढ विश्वास हि दी के अय शृगारिक कवियो म दुलभ है। 'कभी-न कभी तो मेरी वेदना विह्वल पुकार तुम्हारे बहरे कानो को खोलगी ही —इस प्रकार की दढता विरही की एकनिष्ठना क कारण है। प्रिय की करुणा दृष्टि न भी मिले ता भी विरहिणी अपन साधना पथ से विचलित नही होगी। वह प्रिय के सम्मुख एक दूसरी ही चुनौती प्रस्तुत कर देती है

> 'तुम दीन्ही पीठि, दीठि कीन्ही सनमुख मान,
> तुम पडे परे, राखि रह्यौ यह प्रान का।
>
> और सबै सहा कछू कहौं न कहा है बस,
> तुम्है बदौ तौ प जौ बरजि राखौ ध्यान कौं॥'

—घनआनद ग्रथावली, पृष्ठ १००/३१०

यहा प्रिय के ध्यान (स्मरण) का ही विरहिणी अपनी शक्ति और अमूल्य निधि मानकर चलती है। क्या कि प्रिय के विमुख हो जाए पर वह उसकी ओर और अधिक उमुख हा जाता है। प्रिय प्राणा के पीछे पडा है अथात उनको समाप्त कर देना चाहता है, लेकिन ध्यान उनकी रक्षा म लगा हुआ है— तात्पय यह है कि प्रिय के ध्यान न ही विरहिणी को जिन्दा रखा है। अत म वह कहती है कि मैं बिना कह सब कुछ सहन कर रही हूँ क्योकि इस पर मेरा कोइ वश नही है। लेकिन तुम्ह तब जानू जब तुम मरे ध्यान को भी रोक लो। इसम स्पष्ट है कि विरहिणी के पास कवल प्रिय की यादें ही रह गई है। इन यादा की रक्षा के लिए वह भयकरतम विष के घमण्ड को चूर करने वाली विरह-दशा का निरतर पान करते हुए अपन प्राणो को शरीर के अन्दर घाट रही है। प्रेम के रण क्षेत्र की धूलि म अपनी सास का चूर चूर कर, साहसपूवक उद्विग्नता के विषाक्त बाणा को अपन सीन पर झेल रही है।' अत म वह अपने प्राणो को सान्त्वना देते हुए कहती है कि 'इतना करन पर भी यदि प्रिय अनुकूल नही हाते ता तू भूलकर भी इसके लिए पश्चाताप मत करो। क्योकि विधाता ने तुम्हारे हिस्से अगारा पर लेटना ही

लिखा है' (घनानन्द कवित्त, ५६)। इससे स्पष्ट है कि घनानन्द ने विरहिणी के द य और निरवलम्बता का चित्रण करते हुए भी उसम एक अपूर्व साहस और दढता का समावश किया है। वस्तुत इस साहसिकता का मूलाधार कवि का विशेष प्रेमादश या उसकी प्रेम सम्बन्धी यह मान्यता है

चदहि चकोर करै, साऊ ससि दह धरै,
मनसा हूँ रहै एक, दखिवे को रहै द्व।
ज्ञान हूँ त आगे जाकी पदवी परम ऊँची
रस उपजाव तामैं भोगी भाग जात ग्व।
जान घनआनद अनाखो यह प्रेम पथ,
भूले ते चलत, रहैं सुधि क थकित ह्व।
बुरौ जिन मानौ जौ न जानौ कहूँ सीखि लहु,
रसना क छाले पर प्यारे नेह-नाव छव॥'

—घनआन द ग्रथावली, पृ० ६५/२६६

यहा कवि ने प्रेम साधना का ज्ञान योग या भक्ति से भी उच्च स्थान दिया है। यह चद्रमा (प्रिय) को चकार (प्रेमी) और चकोर को च द्रमा की स्थिति म ला देता है। जिस प्रकार ज्ञान की चरम स्थिति म ज्ञाता और ज्ञेय या भक्त और भगवान की अद्वैतता स्थापित हा जाती है, ठीक उसी प्रकार प्रेम की चरमावस्था म प्रेमी और प्रिय का भी अद्वत हो जाता है। प्रेमी और प्रिय की पूण एकता की स्थिति से उत्पन्न आनन्द (रस) म भोगियो की समूची भाग भावना तिराहित हो जाती है। अपन इस रूप म घनानन्द क यहा प्रेम साधना की उस भूमि पर पहुँच गया है जहा वासना पूणत निरोहित हो गइ है। प्रेम के इस अनोखे पथ पर आत्मविस्मति म चलकर ही सफलता मिल सकती है, सतक होकर चलन वाला हार मान कर वठ जाना है। अन विदम होने के बावजूद भी घनानन्द के यहा प्रम म अतत एक समता की स्थिति मिलती है, जो सूफी प्रेम के अधिक निकट प्रतीत होती है। यहाँ प्रेम एक एसा साधना माग वन गया है जो निरन्तर साधन स साध्य वनता गया है। इस अहैतुकता के कारण प्रेम या उसकी पीडा ही प्रेमी के लिए प्रिय की अमूल्य थाती वन जाती है

'कौन कौन बात को परखा उर आनिय हो,
जान प्यार कसे विधि-अक टारियत है।
थाती लौ तिहारी प्रीति छाती प विराजि रही,
हरि हरि आँसुन - समूह ढारियत है॥'

—घनआनन्द ग्रथावली, पृ० ४२, १२६

प्रिय की उपेक्षा और उसकी निष्ठुरता को विधाता का अंक या भाग्य का लेखा मानकर विरहिणी अपने मन से असंतोष और सभी प्रकार के पछतावों को निकाल कर 'प्रेम की पीर' को प्रिय की मूल्यवान धरोहर के रूप में हृदय में संजोए हुए है। उसके नेत्र इसे देखकर विह्वलतापूर्वक अश्रु न्योछावर करते रहते हैं। एकतरफा प्रेम के सन्दर्भ में इस प्रकार की तल्लीनता और अन्तरंगता प्रकारान्तर से विरही की दृढ़ता और साहस के ही सूचक हैं।

(छ) वियोग में प्रकृति तथा अन्य बाह्य व्यापार—वियोग-वर्णन में अपने समय के अन्य कवियों की भाँति घनानन्द ने भी वर्षा, मेघ, चाँद, चाँदनी, अँधेरी रात, फाल्गुन, वसंत, होली आदि प्राकृतिक उपकरणों एवं सामाजिक अवसरों का सहारा लिया है। संयोग काल में ये उपकरण जिस प्रकार सुखात्मक अनुभूति में वृद्धि करते हैं, ठीक उसी प्रकार वियोग-काल में दुखात्मक अनुभूति को भी उद्दीप्त करते हैं। घनानन्द ने भी इनका उपयोग प्रायः उद्दीपन के रूप में ही किया है। लेकिन प्रकृति के रीतिबद्ध स्वरूप का परित्याग कर कवि ने उसके साथ एक गहरी आत्मीयता भी व्यक्त की है। इसे समुचित रूप से समझने के लिए एक उदाहरण लिया जा सकता है

> 'एरे बीर पौन ! तेरो सबै ओर गौन, बारी
> तोसों और कौन, मन ढरकौंही बानि दै।
> जगत के प्रान ओछे बड़े को समान, घन
> आनद निधान सुख-दान दुखियानि दै।
> जान उजियारे गुन भारे अंत मोही प्यारे
> अब ह्वै अमोही बैठे, पीठि पहिचानि दै।
> बिरह बिथाहि मूरि, आँखिन मैं राखौं पूरि,
> धूरि तिनि पायन की हा हा ! नैकु आनि दै।।'

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृष्ठ ८४/२५६

रीतिबद्ध कवियों की भाँति घनानंद ने वियोग वर्णन में दूत दूती या सन्देशवाहक आदि की मध्यस्थता की व्यवस्था प्रायः नहीं की है। लेकिन उक्त उदाहरण में विरहिणी ने वायु से अपनी व्यथा का निवेदन करते हुए प्रिय के चरणों की धूलि लाने का अनुरोध किया है। वस्तुतः पवनदूत और मेघदूत की परम्परा भारतीय साहित्य में पर्याप्त प्राचीन काल से रही है। इसमें जहाँ एक ओर व्यापक प्रकृति के साथ विरही के हृदय का तादात्म्य सिद्ध होता है वहीं दूसरी ओर कवि की रीतिमुक्तता का भी आभास मिलता है। वायु की सर्वत्र प्रसरणशीलता और उसके समतावादी लोकहितकारी स्वरूप का स्मरण कराते हुए विरहिणी अपने अत्यन्त रूपवान प्रिय की विमुखता से भी परिचित कराती है। प्रिय के मन में उपेक्षा भाव

है अत उसके पास कोई सदेश न भेजकर वह वायु से केवल इतना ही अनुरोध करती है कि 'मेरी विरह-वेदना को दूर करने में सजीवनी बूटी का सा असर रखने वाली प्रिय चरणों की थोड़ी सी धूलि वह ला दे।' प्रिय की चरण रज को आँखों में अजन की तरह लगाकर सताप कर लेना, उसके प्रेम की अद्वैतुकता का सकेतक है। मेघदूत के स दर्भ में भी कवि ने कुछ इसी प्रकार की भावना को प्रकट किया है

> परकाजहि देह को धारि फिरौ परज य जथारथ ह्वै दरसौ।
> निधि नीर सुधा के समान करौ सब ही विधि सज्जनता सरसौ।
> घनआनद जीवन दायक हौ कछु मेरियौ पीरहिय परसौ।
> कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवानि हूँ लै बरसौ॥'

—घनआन द ग्रथावली, पृष्ठ १०८/३३६

विरहिणी बादल को दौत्य कर्म के लिए प्रेरित करती हुई कहती है कि 'तुम दूसरों की भलाई के लिए शरीरधारण कर अपने परज य (जो दूसरों के हित के लिए उत्प न हो) नाम को सार्थक करते हो। अत मेरे लिए भी तुम अपने इस नाम को सार्थक करो। समुद्र के खारे जल को अमृत के समान करते हुए तुम सभी प्रकार से अपनी सज्जनता का परिचय देते हो। सारे ससार को तुम जीवनदान करने वाले हो, अत मेरी पीड़ा को भी अपने हृदय में अनुभव करो। यदि और कुछ नहीं कर सकते तो कम से कम उस विश्वासघाती प्रिय के आँगन में कभी अवसर देखकर मेरे आँसुओं की वृष्टि करो। अर्थात मेरी वेदना को उस तक पहुँचाओ।' कहने का मतलब यह कि जिस प्रकार तुम यहाँ घिर कर मेरे हृदय में व्यथा की वद्धि करते हो उसी प्रकार प्रिय के देश में भी घिर कर उसके हृदय में मेरे प्रति वेदना उत्प न करो। इस प्रकार के सहज निवेदनों के अतिरिक्त घनान द ने प्रकृति का उद्दीपन रूप में भी चित्रण किया है। अपने इस रूप में वायु और बादल विरहिणी की व्यथा को बढ़ाने वाले सिद्ध होते हैं

> 'वहै सुख सम स्वेद सम को सहाय पौन
> नाहिं छिय देह, दया महादुखी दहिगौ।
> वई घनआनद जू जीवन को देते, तिनही
> को नाम मारिनि के मारिबे कौं रहिगौ।

—घनआन द कवित्त, १८५

वियोग में सयोग काल के सुखोद्दीपक प्राकृतिक उपकरण व्यथावर्द्धक हो जाते हैं। प्रस्तुत उदाहरण में मिलन सुख से उत्प न श्रम स्वेद के समय शीतलता प्रदान करने वाली वायु अब विरह-काल में शरीर को छूती तक नहीं और यदि

छूती है तो महादुखिया को जलाकर निकल जाती है। सयोग काल म शरीर को नवजीवन प्रदान करने वाले बादल अब विरह व्यथा से मरे हुए के लिए मारने वाले बन गए ह। इस प्रकार प्रकृति के सारे उपकरण सयोगकाल की अपनी प्रकृति को वियोग काल म पूरी तरह परिवर्तित कर देते है। चादनी से सम्बद्ध एक उदाहरण द्वारा इसे अच्छी तरह समझा जा सकता है

> 'नह निधान सुजान समीप तौ, सीचति ही हियरा सियराई।
> साई किधौ अब और भइ, दई हरति ही मति जति हराई।
> है विपरीति महा घनआनद, अबर तें धर को झर आई।
> जारति अग अनग की आचनि जो ह नही सु नई अगिलाई॥'
>
> —घनआनन्द कवित्त, ४०

चाँदनी के प्रभाव वषम्य से त्रस्त विरहिणी की वदना को कवि ने यहा अत्यन्त कौशल के साथ प्रस्तुत किया है। चादनी को देखकर वह कह रही है कि प्रेम के आगार प्रिय सुजान क निकट रहन पर तो यह हृदय का सीचकर शीतल करती थी। समझ मे नहीं आता कि अब वह पहले वाली चादनी है या काइ दूसरी हो गई है। इस सम्बन्ध म सबसे 'विचित्र बात तो यह है कि आकाश स आग की लपटें पथ्वी की ओर आ रही ह जब कि लपटा की विशषता यह है कि वे नीचे से ऊपर की ओर जाती ह। ये लपटें काम वेदना की ज्वाला से सभी अगा को जला रही हैं। लगता है यह चादनी नही वरन कोई नए प्रकार का अग्निदाह है। वस्तुत घनानन्द जहा बाह्य उपकरणा का सहारा लेन लगते हैं, वहा अभिव्यक्ति की मार्मिकता म प्राय बाधा पडती है। यहा चादनी के प्रभाव वषम्य पर अधिक दष्टि होने के कारण विरहिणी की वेदना पूरी तरह उद्घाटित नही हो पाती। लेकिन इस तरह के बाह्यनिरूपक चित्र इनके काव्य म बहुत ही कम मिलेंगे। होली वसत, पावस आदि के प्रसगा म कवि न विरहिणी की व्यथा का अत्यत मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। इस दष्टि स फाल्गुन का एक उदाहरण लिया जा सकता है

> 'सोधे की बास उसासहिं रोकति, चदन दाहक गाहक जी को।
> ननिन वरी सु है री गुलाल अबीर उडावत धीरज ही को।
> राग बिराग धमार त्यौ धारमी, लौटि परयौ ढग या सबही को।
> रग रचावन जान बिना घनआनद लागत फाल्गुन फीको॥
>
> —घनआनन्द ग्रन्थावली, पष्ठ ८५/२८२

फाल्गुन महीने म आने वाली होली एक अत्य त रगीन और उत्साह-वद्धक त्यौहार है। लेकिन विरहिणियों क लिए यह अत्यन्त मारक बन जाता है। यहाँ

विरहिणी के लिए होली के अवसर पर प्रयुक्त होने वाली सुगंधियाँ कमघादू और चन्दनादि शीतल पदार्थों का लेप प्राणों को न्ध करने वाला सिद्ध हो रहा है। वातावरण म उड़ता हुआ गुलाल उसके नाश के लिए धप्टकर धुम्र और हवा म उड़ता हुआ अबीर उसके धय का उड़ान(समाप्त करना) वाला साबित हो रहा है। विभिन्न राग रागिनियो न गाए जाने वाले गीत उसम वैराग्य उत्पन्न करने वाले और धमार (होली का एक विशेष गीत) उसके हृदय पर तलवार की धार जसी चोट करने वाला सिद्ध हो रहा है। इस प्रकार होली क रगीन उत्सव पर होने वाली सारी उत्साह वद्धक क्रियाओं का प्रभाव ही उलटा हो गया है। आनन्द की रचना करने वाले प्रिय सुजान के बिना विरहिणी क लिए फाल्गुन फीका और अत्यन्त उदासी का वातावरण उपस्थित करता है। घनानन्द न होली क इस प्रकार के हृदय विदारक भाव चित्र प्रस्तुत किए हैं। होली म कन्हैया बनने वाले बहादुरशाह 'रगीले' के राजदरबार का प्रभाव इसम स्पष्ट रूप म देखा जा सकता है अपनी एहिकतापरक या लौकिक शृगार की रचनाओं म घनानन्द न इस अवसर को प्राय वियोग से सम्बद्ध करके देखा है। इनके भक्तिपरक पदों म भी होली का सर्वाधिक चित्रण है लेकिन वहाँ इस अवसर को प्राय राधा-कृष्ण के सयोग के साथ सम्बद्ध किया गया है। एक उदाहरण के माध्यम से इसे समझा जा सकता है

> 'हो उनके रँग वे मेरे रँग भीजि भीजि रीझनि माँची रसहोरी है।
> भली भई फागु के दिननि म उघरि परी हितचारी है।
> प्रीतिरीति गीतनि गावत ब्रज घर घर केसरि घारी है।
> आनदघन राधिका दामिनी जगत उजागर जोरी है ॥
>
> —घनआनन्द ग्रन्थावली, पद सख्या ३१८

पदावली' के अधिकाश पदो म इसी प्रकार की क्रीडापरकता मिलेगी। लेकिन सुजानहित मे इस पर्व को यथा-वद्धक रूप म ही कवि ने चित्रित किया है

> फागुन महीना की कही ना परै बात दिन—
> रात जस बीतत सुन तें डफ घार का।
> कोऊ उठ तान गाय, प्रान बान पठि जाए,
> हाय चित बीच प न पाऊँ चितचोर का।
> मची है चुहल चहूँ ओर चोप चाचरि सा
> कासा कहौ सहौ हौं बियोग झकझोर का।
> मेरो मन आली वा बिसासी बनमाली बिन,
> बावर लौं दौरि दौरि परै सब ओर का॥'
>
> —घनआनन्द ग्रन्थावली, पृष्ठ १२६/४११

फागुन महीने में निरंतर बजने वाले डफ (ढोल) की भयंकर आवाज सुनकर विरहिणी जिस यातना में अपना समय काट रही है, उसे कहा नहीं जा सकता। इस महीने में गाए जाने वाले गीतों की एक एक तान उसके हृदय में बाण की तरह प्रविष्ट होकर पीड़ा पहुँचाती है। चाचर (होली का विशेष गीत) की उमंग से भरपूर समूचे विनोदपूर्ण वातावरण में वह विरह द्वारा जिस प्रकार झिझोड़ी जा रही है उस यंत्रणा को बिना कहे मौन भाव से सहन कर रही है। विश्वासघाती प्रिय के अभाव में उसका मन पागलों की तरह चारों ओर दौड़ता फिर रहा है।

फागुन मास और उसमें पड़ने वाले होली के त्यौहार के साथ ही वसंत को भी घनानंद ने विरहोद्दीपक के रूप में चित्रित किया है। रतिराज (कामदेव) का सहायक होने के नाते ऋतुराज (वसंत) विरहिणी के लिए अत्यंत मारक सिद्ध हो रहा है

'वासर वसंत के अनंत ह्वै के अंत लेत,
ऐसे दिन पार जु निहारैं जिय राति है।
लतनि की फूलनि तमालनि पैं झूलनि का,
हेरि हेरि नई नई भाँति पियराति है।
प्यारे घनआनँद सुजान, सुनौ! बाल-दसा,
चन्द पवन तें पजरि सियराति है।
औसर सम्हारौ न तो अनआयबे के संग,
दूरि देस जायबे कौ प्यारी नियराति है॥'
—घनआनंद ग्रंथावली पृ० १२६/४१०

यहाँ नायिका की विषम स्थिति का दूती द्वारा प्रिय से निवेदन किया गया है। वह कह रही है कि 'वसंत के दिन अंतहीन होकर विरहिणी को मार डाल रहे हैं। उसके लिए इन्होंने ऐसी घड़ी उपस्थित कर दिया है कि चारों तरफ अंधकार ही अंधकार दिखाई देता है। लताओं का फूलना और मस्ती के साथ तमाल वृक्षों के गले लगकर झूलना देखकर वह विचित्र ढंग से पीली पड़ती जा रही है। शीतल मंद, सुगंधित वायु से वह झुलस कर ठंडी पड़ने वाली है। समय रहते ही यदि आप उसे सभाल नहीं लेते तो उसकी कुशल नहीं है। आपके न आने के साथ (न आने पर) वह दूर देश के निकट (मृत्यु के करीब) पहुँचती जा रही है।' यहाँ यह स्मरणीय है कि घनानंद ने संयोग और वियोग दोनों ही स्थितियों के चित्रण में दूती या मध्यस्थ का सहारा प्रायः नहीं लिया है। यदि इस प्रकार का विधान उन्होंने कहीं भी किया है वहाँ रीतिबद्धता का आभास मिलने लगता है। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि प्रकृति के संबंध में उनकी दृष्टि अधिक व्यापक है। फलस्वरूप इनके यहाँ प्रकृति मानवीय भावनाओं से रंजित

होकर प्रस्तुत हुई है। इसे समझने के लिए पावस का एक उदाहरण लिया जा सकता है

'बिकल बिषाद भरे ताही की तरफ तकि,
दामिनि हू लहकि बहकि यौं जर्‌यौ कर।
जीवन अधार पन पूरित पुकारनि सों,
आरत पपीहा नित कूकनि कर्‌यौ कर।
अस्थिर उदग गति दखि कै अनदघन,
पौन बिडर्‌यौ सो बन वीथिनि रर्‌यौ कर।
बूंदै न परति मेरे जान जान प्यारी, तरे
बिरही को हेरि मेघ आसुनि झर्‌यौ कर॥'

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृ० ७४/२२६

बिरही की अन्तर्मुखता और आत्मनिष्ठता समूचे प्राकृतिक व्यापार को उसकी वदना से रंजित कर देती है। प्रकृति से इस प्रकार का तादात्म्य सूफी कवि जायसी के साथ ही सूरदास मीरा कबीर आदि सभी भक्त कवियों म हम देखने को मिलेगा। रीतिबद्ध कवियो मे इसका पर्याप्त अभाव दिखाई देता है। प्रस्तुत कवित्त म दूती नायिका से उसके प्रेमी की व्यथा का निवेदन कर रही है। वह पावसकालीन समस्त प्राकृतिक क्रिया व्यापार का कारण विरही की व्यथा म दिखाकर नायिका के हृदय म दया उत्पन्न करना चाहती है। बिरही की विषाद पूर्ण स्थिति स द्रवीभूत होकर बिजली का पागल होकर दहक उठना और अपन जीवनाधार प्रिय के प्रेम की प्रतिना म परिपूर्ण उसकी (बिरही की) पुकार को सुन पपीहे का करुणाभिभूत होकर क्रन्दन करना व्यथा के सर्वग्रासी होने की मार्मिक अभिव्यक्ति है। बिरही की अस्थिर और बेचन स्थिति से व्याकुल होकर वायु का दिग्भ्रमित होना तथा वन और गलियो म भटकना इस व्यथा की मार्मिकता म और अधिक वृद्धि करता है। अत म यह कथन कि हे प्यारी सुजान! ये बरसात की बूंदें नही, वरन् तुम्हारे विरही की व्यथा से द्रवीभूत होकर बादला न अश्रु की झडी लगा रखी है। प्राकृतिक क्रिया व्यापार म इस प्रकार की सहानुभूति प्रकृति के साथ मानव के चिरसाहचर्य का संकेतक है। वह अपन सुख और दुख म प्रकृति को अपने सबसे निकट पाता है। प्रस्तुत उदाहरण म भी कवि न मध्यस्थ के रूप म दूती का विधान किया है लेकिन परम्परा का यहाँ निर्जीव रूढि के रूप म अन्धानुकरण नही किया गया है। प्राकृतिक व्यापारो म इस प्रकार की सहानुभूति प्रदान के साथ ही कवि ने उनम शत्रु भाव का भी समावेश किया है। कोकिल मोर, पपीहा, बादल आदि की आवाज विरहिणी की वेदना के लिए कटे पर नमक का काम करती प्रतीत होनी है

कारी कूर कोकिला ! कहाँ को बैर काढ़ति री,
कूकि कूकि अबही करेजा किन कोरि ल।
पड परे पापी य कलापी निसि चौस ज्यौं ही,
चातक ! घातक त्यों हो तू हू कान फारि ल।
आनँद के घन प्रान जीवन सुजान बिना,
जानि कै अकेली सब घेरो दल जोरि ल।
जौं लौं कर आवन बिनोद बरसावन व,
तौ लौं रे डरारे बजमार घन घोरि ल॥'
—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृ० ८७/२६६

इसम नाम परिगणना प्रणाली और रीतिबद्धता का आभास अवश्य मिलता है, लेकिन आत्म निवेदन के रूप म विरहिणी द्वारा कोकिल, मोर, चातक, बादल आदि के लिए प्रयुक्त आक्रोशसूचक विशेषण सारे वर्णन म एक व्यक्तिनिष्ठ स्पर्श ला देते हैं। अत इस नितान्त रीतिबद्ध एव घिसा पिटा वर्णन नही कह सकत। इसी प्रकार सावन माघ, ग्रीष्म, बसत आदि महीनो ऋतुओ तथा अन्यान्य प्राकृतिक उपकरणो और दृश्यो के माध्यम स घनानन्द न विरह-व्यथा की मार्मिकता को सफलतापूर्वक अभिव्यक्ति दी है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि घनानन्द की विरह भावना वेदना की विलासपूर्ण कल्पना न होकर अधिकाशत अपन निजी जीवनानुभवो पर आधारित है। इसलिए उसम एक विशेष प्रकार की सहजता और हृदयस्पर्शिता मिलती है। गहन चिन्ताजन्य आत्म निवेदन और निजी अनुभव स्पर्श इनके वियोग-वर्णन को मात्र वर्णन न रहने देकर आत्माभिव्यक्ति का दर्जा देत हैं। अत इनकी वेदना पाठक को अपना सहभागी बनाती है। यह विशेषता इन्हें अपन युग के अधिकाश कवियो म भिन्नता प्रदान करती है।

९ भक्ति-भावना

घनानन्द की भक्ति भावना की चर्चा के बिना, उनका परिचय अधूरा ही रहेगा। लौकिक प्रेम के संयोग और वियोग—दोनों ही क्षेत्रों में निष्णात और 'प्रेम की पीर' का अद्भुत गायक यह कवि आगे चलकर ईश्वरोन्मुख हो गया है। भौतिक प्रेम का आध्यात्मिक प्रेम में रूपान्तरण मध्यकालीन भावासिक्ता का एक बहुत बड़ा सत्य है। सूर, तुलसी नन्ददास, रसखानि आदि भक्तिकालीन कवियों में ही नहीं, वरन् पद्माकर आदि रीतिकालीन कवियों में भी इसे देखा जा सकता है। घनानन्द के जीवन-वृत्त के सन्दर्भ में इस तथ्य की ओर संकेत किया जा चुका है कि लौकिक प्रेम की असफलता से प्रेरित होकर वे वृन्दावन चले गए और वहाँ निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित होकर सखी भाव के उपासक बन गए। सुजान वेश्या के प्रति इनकी घोर आसक्ति राधा और कृष्ण के प्रति प्रेम में रूपान्तरित हो गयी। इस प्रकार वासना का साधना में रूपान्तरण एक ठोस मनोवैज्ञानिक तथ्य पर आधारित है। मध्य काल के धर्म प्राण जीवन के लिए यही स्वाभाविक मार्ग था। यहाँ यह तथ्य विशेष उल्लेखनीय है कि घनानन्द द्वारा अपनाई गई लौकिक क्षेत्र की उन्मुक्तता भक्ति के क्षेत्र में प्रायः गायब हो गई है। फलस्वरूप शिल्पगत लाक्षणिकता और वाणी की वक्रता में भी पर्याप्त कमी आई है। साम्प्रदायिक भक्त 'बहुगुनी' के रूप में घनानन्द का कथन है

> 'राधा मदन गोपाल की हौं सेज बनाऊँ।
> दूध फेन फीका कर बर बसन बिछाऊँ।
> बासनी नव कुसुम लै रुचि रुचिहि रचाऊँ।
> नव पराग भरि भाव सों तिन पर बगराऊँ॥
>
> —घनआनन्द ग्रन्थावली, पद ११६

अभिव्यक्ति की इस सहजता में भी एक विशेष प्रकार की तन्मयता देखी जा सकती है। इस तन्मयता का आधार लौकिक प्रेम के प्रत्यक्ष अनुभव हैं। अपने लौकिक वियोग काल में कवि ने प्रेम को गहराई से अनुभव किया था और उसके स्वरूप पर विचार करते हुए अंत में निर्धारित किया था कि आध्यात्मिक प्रेम पयोधि की 'तरल तरंग' का ही एक क्षुद्र कण संसार विश्व का लौकिक प्रेम है

प्रेम को महोदधि अपार हरि कै बिचार,
बापुरो हहरि बार ही तें फिरि आयौ है।
ताही एक रस ह्वै बिवस अवगाहैं दोऊ,
नेही हरि राधा जिन्हैं देखे सरसायौ है।
ताकी कोऊ तरल-तरंग संग छूट्यौ कन,
पूरि लोक लोकनि उमगि उफनायौ है।
सोई घनआनँद सुजान लागि हेत होत,
ऐसें मथि मन पै सरूप ठहरायौ है॥'
—घनआनन्द कवित्त, पृ० २०२/३१०

इससे स्पष्ट है कि लौकिक प्रेम राधा कृष्ण के अलौकिक प्रेम का ही एक अंश है। फलस्वरूप घनानन्द अंश को त्याग कर अंशी की ओर उन्मुख हुए है।

कवित्त-सवयो म रचित 'सुजान हित' को छोडकर घनानन्द की अन्य सभी रचनाएँ किसी न किसी रूप म उनकी भक्ति भावना से सम्बन्धित है। यद्यपि इनका साहित्यिक गौरव लौकिक प्रेमपरक रचनाओं के कारण ही है फिर भी मात्राधिक्य के कारण और इनके समग्र व्यक्तित्व से समुचित परिचय के लिए भक्तिपरक रचनाओं का पर्याप्त महत्त्व है।

कृपाकन्द घनानन्द की भगवतकृपा के महत्त्व से सम्बन्धित रचना है जिसम 'सुजान हित' के भी कुछ कवित्त-सवय समाविष्ट कर लिय गए है। इस रचना के अधिकाश कवित्त सवया तथा पदा म सुजान नाम का स्याम के साथ सम्बद्ध कर दिया गया है। इसके साथ ही सासारिक बिरक्ति के भाव को स्याम कृपा के साथ जोडा गया है। लगता है कि यह घनानन्द की बिरक्ति के आरम्भिक दिनों की रचना है, जिसम 'सुजान हित' का कवि साफ साफ पहचान म आता है। इसका एक उदाहरण है

'आयु जो वायु तौ धूरि सबै सुख जीवन मूरि सभारत क्यौं नहीं।
ताहि महागति साहि कहा गति बैठें कबगी बिचारत क्यों नहीं।
नमनि सग फिर भटक्यौ पल मूदि सरूप निहारत क्यौं नहीं।
स्याम-सुजान कृपा घनआनँद प्रान-पपीहनि पारत क्यौं नहीं॥
—घनआनन्द ग्रथावली, पृ० १५१/१२

सासारिक जीवन और सुखो के प्रति विरक्ति कवि को भगवत भक्ति की ओर ले जाती है।

वियोग बेलि म घनानन्द न कृष्ण के प्रति गोपियों की विरहानुभूति का चित्रण किया है। कवि के लौकिक विरह की व्यथा किस प्रकार अलौकिक के विरह की व्यथा बन गई है—इसका अच्छा उदाहरण इस रचना म मिलता है।

लगता है गोपियां के माध्यम से कवि ने अपनी ही व्यथा का निवेदन किया है। इसे स्पष्ट रूप से समझने के लिए एक दो उदाहरण पर्याप्त हैं

'अनोखी पीर प्यारे कौन पावै।
पुकारौं मौन मैं कहिबो न आवै॥
अचंभे की अगनि अंतर जरौं हौं।
परौं सियरी भरौं नाहिं मरौं हौं॥
—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृ० १६८/१६ १७

फारसी शैली की भावावेशपूर्णता यहाँ स्पष्ट रूप से लक्षित होती है। सारी रचना इसी शैली में लिखी गई है। स्थान स्थान पर 'सुजान हित' की लाक्षणिक शब्दावली भी इसमें दिखाई देती है। इश्कलता' की रचना भी कवि ने इसी शैली में की है। इसमें प्रगाढ़ प्रेम भावना और गहरी वियोग व्यथा के साथ ही प्रिय के मादक सौंदर्य का वर्णन फारसी की अतिशय भावात्मक शैली में किया गया है। इसकी भाषा में अरबी फारसी के शब्दों के साथ पंजाबी भाषा की प्रमुखता है। केवल दोहों में ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है। अरल्ल, निमानी, माझ आदि छंदों की भाषा अरबी फारसी मिश्रित पंजाबी है। इसमें इश्क, महबूब, यार, दिलदार, जहर, कहर आदि शब्द फारसी की शेरो शायरी का वातावरण प्रस्तुत करते हैं। दो चार उदाहरणों में यह बात स्पष्ट हो जाएगी

जिगर जान महबूब जमाने की बेदरदी देंदा है।
पावै दिलां दे अन्दर धँसकर बेनिसाफ दिल लदा है॥
दिलपसंद दिलदार यार तू मुजनू की तरसा दा है।
रति दिहाड़े तलब तुमाडी अक्कल इलम उडान्दा है॥'
—घनआनन्द ग्रन्थावली पृ० १७७/१८ १६

इस प्रकार की भाषा और भावाभिव्यक्ति को देखकर कुछ विद्वानों ने इसे घनानंद से भिन्न किसी दूसरे आनन्दघन की रचना बताया है। लेकिन घनानन्द की मूल रचना दृष्टि को देखते हुए इस प्रकार की आशंका निर्मूल लगती है। उनकी अन्य रचनाओं से समानता देखने के लिए एक उदाहरण पर्याप्त है

'हीन भए जल मीन छीन बुधि मंडी पीर न पावै है।
लाय कलक यार अपने कूं तही छिन मरि जावै है॥
—घनआनन्द ग्रंथावली, पृ० १८१/४१

यही भाव एसी ही शब्दावली में सुजान हित' के अन्तर्गत इस प्रकार आया

हीन भए जल मीन अधीन कहा कछु मो अकुलानि समान।
नीर सनेही को लाय कलक निरास ह्व कायर त्यागत प्रान ॥
—घनआनन्द कवित्त, पृ० ४५/८

'यमुना यश', प्रीति पावस, 'रग बधाई' आदि बहुत ही छोटी रचनाएँ है जिनके नाम म ही उनके विषय स्पष्ट हैं। 'प्रेम पत्रिका' भी एक छोटी ही रचना है, लेकिन काव्य गुणा की दृष्टि स यह 'सुजान हित' जसी ही है। इसका आरम्भ प्लवग छ द स इस प्रकार हाता है

'स्याम तिहारी पाती तुमहि सुनाइहौ।
हाय हाय फिरि हाय कहूँ जा पाइहौ ॥
—घनआनन्द ग्रथावली, पृ० १६१/१

इसके बाद विरहिणी गापिया न प्रेम पत्र के माध्यम से उपालभ मिश्रित अपना सदेश कृष्ण के पास भेजा है। अनुभव चन्द्रिका, गोकुलगीत, नाम माधुरी, गिरि पूजन, भावना प्रकाश आदि रचनाओ म भक्ति भावना क विविध रूप आए ह। भक्ति भावना की दृष्टि स प्रेम-पद्धति' और वृषभानुपुर सुषमा वणन का विशेष महत्व है। 'प्रेम पद्धति' म कवि न अपन सम्प्रदाय की उपासना पद्धति को अच्छी तरह स्पष्ट किया ह। गोपी भाव का अनुसरण करत हुए, उनक प्रति आदर निम्बाक सम्प्रदाय म विहित सखी भाव की उपासना का सकेतक है। इसका आरभ गोपिया के महत्व स्मरण स इस प्रकार होता है

'कहा कहौ गोपिन की प्रेम। बिसर जहा सब विधि नम ॥

'प्रेम पद्धति' की भाँति ही वृषभानु पुर सुषमा वणन का भी साम्प्रदायिक दृष्टि से विशेष महत्व है। इसके नाम स लगता है कि इसम वृषभानुपुर का वणन होगा। लेकिन इस दाहे और चार चौपाइया मे वृषभानुपुर का वणन करन के बाद कवि न अपनी साम्प्रदायिक स्थिति को विस्तार स स्पष्ट किया है। अपने को राधा की चौकस चेरी' बतात हुए उसने ललिता, विसाखा आदि राधा की अतरग सखिया के प्रति भी अपना आदर भाव व्यक्त किया है। राधा न प्रसन्न हाकर उसका बहुगुनी नाम रखा है। वस्तुत निम्बाक सम्प्रदाय के उपासक घनानन्द को सखी भाव की उपासना के लिए साम्प्रदायिक नाम 'बहुगुनी प्राप्त हुआ था

राधा नाव बहुगुनी राख्यौ।
साई अरथ हिय अभिलाख्यौ ॥
—घनआनन्द ग्रथावली पृ० २४१/१६

बहुगुनी का अथ है, बहुत गुणा से युक्त। भक्त के रूप म इस अथ की हृदय

म पूण अभिलाषा ही 'बहुगुनी' का उद्देश्य है

'रीझनि बिबस होत जब जानौं।
तब बहुगुनी कला उर आनौं॥

बहुगुनी कला का अभिप्राय भी इस रचना म स्पष्ट किया गया है। राधा की चेरी के रूप म बहुगुनी का काय है शृगार के सब सामान एकत्र करना, फूलों के आभूषण बनाना, रमणीय उक्तियां, कवित्त, छन्द, सगीत आदि से राधा का प्रसन्न करना। सम्प्रदाय की ओर से ये ही काय घनानन्द को सौंप गए थे। अपनी गायन कला और कवित्व शक्ति के लिए व प्रसिद्ध थ ही। इसे प्रस्तुत रचना म इस प्रकार सकलित किया गया है

ताही सुरहिं साधि कछु बोलौ। प्रेम लेपटी गासनि खोलौ॥
दुरी बात हू उघरि पर जब। सो सुख कह्यौ परत न कछू तब॥

सुर साधना और दुरी बात को खोलकर राधा कृष्ण को प्रसन्न करन के लिए घनानन्द के कृतित्व का लगभग एक तिहाई अश विभिन्न राग रागिनियों म निबद्ध पद साहित्य है। अत भक्ति भावना की दृष्टि स इनकी पदावली का विशष महत्व है।

घनानन्द की पदावली म कुल १०५७ पद ह। य सभी पद कवि की भक्ति भावना से सम्बद्ध है। सात्विक भक्ति, श्री कृष्ण बधाई, यमुना यश, मुरलीनादन, प्रेम की अनन्यता, पूर्वानुराग, अभिलाषा, प्रेमोपालम्भ, सयोग वलि, विरह, खण्डिता मान, विविध प्रकार की लीलाएँ होली, बसन, फाग आदि इन गीतों क प्रमुख विषय है। सखी भाव की उपासना के अन्तगत कृष्ण भक्ति के सम्पूण आचार विधान इन गीतों म अच्छी तरह समाहित हो गए है।

गीति काव्य की दृष्टि स घनानन्द की पदावली एक अनूठी रचना मानी जा सकती है। ब्रजभाषा सगीत विशेषकर सूर सगीत स इसम पर्याप्त भिन्नता है। सूर के पद शब्दाथ प्रधानता के कारण काव्यात्मक भले ही हो, लेकिन ताल, लय आदि की दृष्टि से घनानन्द के पद अधिक महत्वपूण है। महात्मा हितवृन्दावनदास की 'हरिकला वलि' म घनानन्द के ख्याल की इस प्रकार प्रशसा की गइ है

'आनन्दघन को ख्याल इक गायौ खुलि गए नन।
सुनत महा विह्वल भयौ मन नहिं पायौ चन॥

वस्तुत ख्याल मे शब्दार्थ की अपक्षा सगीत तत्व की प्रधानता होती है। अति सक्षिप्त शब्द-रचना का ताल और सुर के आरोह-अवरोह द्वारा विस्तार इसकी विशेषता है। उदाहरण के लिए घनानन्द का एक ख्याल लिया जा सकता है

तारे कारनुवां का बरा मोरा जिय तरस।
आनदघन प्रिय दरस औमेरनि अँसुवनि मेहा बरस ॥'
—घनआनद ग्रथावली, पृ० ४१६/३६३

यह अपन आप म एक सम्पूण गीत है। लेकिन इसकी पूर्णता की सिद्धि तान आर सुर के माध्यम म होती है। आलाप इसका प्राण है। ऐसा ही एक दूसरा उदाहरण है

हली ही बस क जावें जमुना जल लगर छैल ठाढो
गैल माँग कर बोली-ठाली।
ब्रजमोहन आनँदघन उनयो ही रहै कहि कहा रहौं
दैया एस जवाली ॥
—घनआनद ग्रथावली, प० ६३५/४८०

ख्यालो के साथ ही घनानद के ताल लयाश्रित अधिकाश पद भी बहुत छोट छोटे, तीन-तीन, चार चार पक्तियों के हैं। इन सभी म काव्यतत्व की अपेक्षा सगीत तत्व की प्रमुखता है। शास्त्रीय सगीत की दृष्टि म य अपभ्राकृत कुछ क्लिष्ट अवश्य ह, लकिन स्थान स्थान पर लोकगीत शली के समावश स इनम एक विशष प्रकार का आकषण आ गया है। उदाहरणाथ एक पद है

'वनवारी रे त तो बावरी करी।
मन की बिथा कौन सो कहियै बीतत जस घरी घरी ॥'
—घनआनद ग्रथावली, पृ० ४४७/५०५

लेकिन जहा इस प्रकार की लोकधुनें नही भी है वहा लोक-तत्व और लोक भाषा के समावश से कवि न अदभुत मार्मिकता उत्पन्न की है

इन बिरहा फाग मचाय दई, आए न ए निरदइ सुध्यो न लई।
रग लियो सब अगनि तें हो भिज भिज यो सुखइ।
या की हथचलई कहा कहियै पल पल हियरा हान हइ।
आनँदघन ब्रजमोहन साहन ऐसें ओसर कसें करत गई ॥
—घनआनद ग्रथावली, प० ५७४/१००६

इस प्रकार के वियोग सूचक पद घनानद की पदावली म कम हैं। 'सुजान हित' का चिरवियोग तो इनम प्राय गायब है। क्रीडा भाव, छेड छाड, प्रिय-स्मरण अभिलाप दशा आदि के भाव ही पदावली म अधिक है। इस प्रकार के स्मरण अभिलाषा आदि विरहमूलक न होकर मिलन सुख स प्रेरित लगते है। इस तथ्य को कुछ उदाहरणो के माध्यम स अच्छी तरह समझा जा सकता है

अरी पनघटवा आनि अर।
अटपटि प्यास भरो ब्रजमोहन पलकनि जोक वर।
रुचिर चाय ललचाय निहारै मेरेऊ धीर हर।
उघरि उघरि भिजवै आनंदघन चापनि लाय झर॥

घनआनन्द ग्रथावली, पृ० ४६७/६६६

वस्तुत इस प्रकार के छोट छोटे गीत अत्यन्त प्रगाढ मनोदशा म लिखे गए हैं। विभिन्न अवसरो पर गाए जान के उद्देश्य से ही इनका निर्माण हुआ है। वसत, होली आदि स सम्बद्ध सभी गीत प्राय इसी उद्देश्य स लिखे गए ह। लोक जीवन म भक्ति के प्रसार के लिए इस प्रकार का माध्यम सर्वाधिक प्रभावशाली होता है। उदाहरण के लिए यहा होली का एक गीत लिया जा सकता है

मतवार मोहन होरी को।
जाहि सहज ही रस का चसका घालन गहि बरजोरी को।
लटुवा भयो फिरत दिन रजनी लगुवा गोरी भोरी का।

या व्रज यह औसर आनंदघन अतिरस ढोराढोरी को॥

—घनआनन्द ग्रथावली पृ० ५१६/७८०

सरस शृगारिक भावनाओ के साथ ही घनानन्द न विरक्तिपूर्ण सात्विक भक्ति के भी अनेक पद रचे है। इस प्रकार के पदो म विरक्त भक्त के मन की अविकल झाकी मिलती है

सुमिरि मन हरि पद साँचो रे।
झूठे राचि वृथा कित धाव डगमग खाचो रे।
सुथरो सुथिर जहा नहिं पहुचत माया नाचौ रे।
अति अखण्ड आनंदघन दरसे फुरति न आचौ रे।
तिहि रस सरसि होत किन कबहूँ जड रोमाचे रे॥

—घनआनन्द ग्रथावली, पृ० ३५०/८०

इस प्रकार हम देखते है कि पदावली के गीतो म भक्त हृदय की तन्मयता अपनी पूरी तीव्रता के साथ उजागर हुई है। भक्ति विषयक अन्याय रचनाओं का अवलोकन करने के बाद हम निर्विवाद रूप से कह सकत हैं कि घनानन्द ने जिस तन्मयता के साथ लौकिक शृगार का चित्रण किया है ठीक उसी तल्लीनता क साथ भक्ति के क्षेत्र म भी रम है। सुजान के प्रति उनका सारा लौकिक आकर्षण अन्तत राधा माधव के चरणा म समर्पित हो गया है। आत्म समर्पण की जिस भावना को लेकर य प्रेम साधना मे प्रवृत्त हुए थे, वह अन्त तक बनी रही है।

१० काव्य-शिल्प

मार्मिक भाव विधान की भाति ही व्यजना कौशल की दृष्टि स भी घनानन्द की कुछ निजी विशेषताएँ है। इन्हे अच्छी तरह समझे बिना उनकी भाव योजना के वशिष्ट्य का उद्घाटन पूर्ण नही हो सकता। कथ्य को पाठक तक सही ढग से सुगमता पूर्वक पहुँचाने का एकमात्र साधन काव्य शिल्प ही है। इसलिए काव्य म इसके महत्व को निर्विवाद रूप से स्वीकार किया गया है। रीतिकाल—जिसम घनानन्द का कवि पल्लवित पुष्पित हुआ था—शिल्प प्रधान युग था। फलस्वरूप उसे कला काल, अलकृत काल आदि नामो से भी अभिहित किया गया है। रीतिकाल अपने आप म विषयगत या कलागत रूढियो की प्रधानता का सकेतक है, जिसम रीति या प्रणाली को विशेष महत्व दिया गया है। घनानन्द म शिल्प के प्रति कोई वसा आग्रह नही दिखाई दता, जसा कि अ याय रीतिबद्ध कविया म हम दखते है। फिर भी ये काव्य के कला पक्ष के प्रति पर्याप्त जागरूक दिखाई देते है। इन्होने भी सवत्र प्राय अलकृत शली का सहारा लिया है। लेकिन विषय और शिल्प के समुचित सामजस्य को दखते हुए हम इन्हे कलावादी नही कह सकते। पाण्डित्य या चमत्कार-प्रदशन की प्रवत्ति इनम कही नही मिलती। इस ठीक से समझने के लिए घनानन्द की भाषा शली के कुछ विशिष्ट पहलुओ पर विचार कर लेना आवश्यक है।

भाषा

भाषा भावो और विचारो की वाहिका होती है, अत वह 'जो भी हो —यह तो ठीक है किन्तु नमी भी हो —इसे उचित नही माना जा सकता (उक्ति विशेषो कब्या भाषा जाहो साहो) इस उक्ति के आधार पर रीतिकाल के प्रमुख आचाय कवि भिखारी दास न तुलसी और गग का कवि शिरोमणि के रूप म स्वीकार किया था। उनकी एतद विषयक मान्यता है

> तुलसी गग दुवौ भए सुकविन क सरदार।
> जिनकी कविता म मिल भाषा विविध प्रकार॥

भिखारीदास न तत्कालीन भाषा प्रयोग की प्रवत्ति का ध्यान म रखकर ही एसी मान्यता निर्धारित की थी। समूचे रीतिकाल म ब्रजभाषा को प्रमुखता देते हुए भी उसके साथ विभिन्न बोलियो म प्रचलित शब्दो का खुला मिश्रण किया

गया। यह प्रवृत्ति काव्य भाषा के लिए बहुत हितकर नहीं सिद्ध हुई। रीतिकालीन ब्रजभाषा साहित्य म जहाँ छन्द, अलकार, कवि ग्रथन-परिपाटी आदि पर इतन विस्तार से विचार किया गया, वहाँ भाषा क सम्बन्ध म एक भी ठीक ठिकाने का ग्रथ नही लिखा गया। इसस भाषा प्रयोग के सम्बन्ध म एक प्रकार की अराजकता दिखाई देती है। घनानन्द न इस अराजकता से अपन का बचाया है। इनकी 'सुजान हित' विशुद्ध ब्रजभाषा म लिखी गई रचना है। 'इश्कलेलि' तथा कुछ पदा म जहा कवि न अरबी फारसी और पजाबी भाषा का प्रयाग किया है वहा ब्रज भाषा को उसम जबरदस्ती नही घुसडा है। यह प्रवृत्ति उनकी काव्य भाषा सम्बन्धी नीति का सकत करती है।

काव्य की भाषा का व्याकरण च्युति, शथिल्य, अथ को व्यक्त करन म अक्षम शब्दावली दुरूहता आदि के दोषो स तो मुक्त होना ही चाहिए। कथ्य को प्रेषणीय बनान के लिए उसका व्याकरणानुमादित होना, शब्दावली का सुविचारित सुव्यवस्थित और सटीक होना, भावाभिव्यक्ति म सहायता पहुँचान वाली शब्द शक्तिया, लोकोक्ति मुहावरा आदि स युक्त होना भी आवश्यक है। इन सबकी समुचित याजना स कवि अपनी अभिव्यक्ति का पनी बनाता है। घनानन्द की भाषा पर इन सभी दष्टियो से विचार करके ही हम इनकी एतद विषयक विशेषताओ को समझ सकत ह।

(क) व्याकरण की दष्टि से—घनानन्द के प्रशस्तिकार ब्रजनाथ न इन्ह 'ब्रजभाषा प्रबीन' और 'भाषा प्रबीन' दोना बताया है। इससे यह स्पष्ट सकेत मिलता है कि य ब्रजभाषा के प्रयोग म निपुण होने के साथ ही भाषा की सामान्य गतिविधिया के भी समथ पारखी थे। कुछ आलोचका न 'भाषा प्रबीन' का अभिप्राय बहुभाषा प्रयाग माना है। घनानन्द की भक्ति विषयक रचनाओ म अरबी, फारसी, पजाबी, अवधी आदि भाषाओ का प्रचुर प्रयोग देखकर ही ऐसा तात्पय निकाला गया है। लेकिन हम पहले ही इस तथ्य को देख चुके है कि जहा कवि न अरबी, फारसी या पजाबी का सहारा लिया है वहा भाषा का स्वरूप अरबी फारसी या पजाबी के ही अनुकूल रखा है। उसम ब्रजभाषा की अनावश्यक घस पठ नही होन दी है। इसी तरह ब्रजभाषा के साथ भी उसने दूसरी भाषाओ के शब्दा का मिश्रण नही होने दिया है। घनानन्द की कीर्ति के प्रमुख स्तम्भ 'सुजान हित' मे विशुद्ध ब्रजभाषा का ही प्रयोग हुआ है। अत उनकी 'ब्रजभाषा प्रवीणता' का विश्लेषण इस रचना के आधार पर ही करना उचित हागा।

घनानन्द की भाषा सम्बन्धी विशेषताओ को समझने क लिए सवप्रथम ब्रज भाषा के स्वरूप पर विचार करना आवश्यक है। इन्होन इसके शुद्ध और साहित्यिक स्वरूप की रक्षा पर पूण ध्यान रखा है। हमने इस तथ्य को पहले ही देख लिया है कि रीतिकाल मे काव्य शास्त्र के अन्तगत अलकार, पिंगल आदि के

नियमों की तो खूब चर्चा हुई, लेकिन भाषा की शुद्धता और उसके व्याकरण की ओर बिल्कुल ही ध्यान नहीं दिया गया। आधुनिक युग में बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर ने जब साहित्यिक ब्रजभाषा का व्याकरण लिखने का निश्चय किया तो रीतिकाल के केवल दो ही कवि मिले, जिन्हें प्रामाणिक आधार बनाया जा सकता था। इनमें एक घनानन्द और दूसरे बिहारी थे।

रीतिकाल में ब्रजभाषा के साथ अवधी का मिश्रण सबसे अधिक हुआ है। शब्द रूपों की दृष्टि से अवधी की प्रकृति अकारान्त और उकारान्त है, जबकि ब्रजभाषा की प्रकृति ओकारान्त दीर्घान्त है। अवधी में कर्तरि प्रयोग होता है, जैसे 'हम कह' 'व पट', 'तुम सुने' आदि। इसके विपरीत ब्रजभाषा में प्रायः कर्मणि प्रयोग होता है और खड़ी बोली की तरह कर्ताकारक में करणकारक का चिह्न 'ने' बहुत से स्थानों पर लगता है, जैसे 'तिन कही', 'उन सुनी' आदि। इस प्रकार की दो विरोधी प्रकृति की भाषा के शब्दों के मिश्रण से अर्थग्रहण में बाधा उत्पन्न होती है। काव्य का अध्ययन करते समय हम भाषा के एक निश्चित स्वरूप को ध्यान में रखते हैं। अतः बीच बीच में अन्य भाषा के आने वाले शब्द और उनके प्रयोग खटकते हैं। इस दृष्टि से विचार किया जाए तो हम देखेंगे कि घनानन्द ने ब्रजभाषा के व्याकरण और शब्द निर्माण की उसकी प्रकृति का सर्वत्र ध्यान रखा है। इनके कवित्त-सवैया में अवधी के शब्द कठिनाई से मिलेंगे। यदि अन्य बोलियों के कुछ शब्द कहीं आए भी हैं तो उन्हें कवि ने बड़े ही स्वाभाविक ढंग से ब्रजभाषा के व्याकरण में निबद्ध कर दिया है। ब्रजभाषा की शुद्धता और व्याकरण व्यवस्था की दृष्टि से केवल बिहारी ही इनकी समकक्षता में रखे जा सकते हैं। क्रिया कारक आदि का रूप विधान, तद्भव रूपों का प्रयोग आदि घनानन्द ने ब्रजभाषा के नियमानुसार ही किया है। अतः इन्हें 'ब्रजभाषा प्रवीन' कहना सर्वथा संगत है।

(ख) शब्दावली की दृष्टि से—बिहारी के साथ ही रीतिकाल के अधिकांश कवियों में हमें अरबी, फारसी, अवधी, बुन्देलखण्डी, बैसवाड़ी, भोजपुरी, राजस्थानी आदि के पर्याप्त शब्द मिलते हैं। लेकिन अपनी ब्रजभाषा की रचनाओं में घनानन्द ने इनका समावेश नहीं के बराबर किया है। केवल भाषा की शुद्धि ही नहीं वरन् शब्द चयन और शब्द निर्माण की दृष्टि से भी घनानन्द ने अपनी विशिष्टता का परिचय दिया है। इसे एक उदाहरण द्वारा अच्छी तरह समझा जा सकता है

> कित को ढरि गो वह ढार अहो जिहि मो तन आंखिन ढोरत है।
> अरसानि गही उहि बानि कछू सरसानि सो आनि निहोरत है।
> घनआनंद प्यारे सुजान सुनौ तब यौं सब भांतिन भोरत है।
> मन मांहि जो तोरन ही, तौ कह्यौ बिसवासी सनेह क्यों जोरत है॥

—घनआनन्द ग्रंथावली, पृ० ८८/२७२

यहाँ 'ढरिगौ', 'ढार', 'ढोरत', 'अरसानि', 'सरसानि', 'निहोरत', 'भोरत', आदि शब्द कवि की शब्द निर्माण शक्ति के परिचायक हैं। 'ढार' शब्द ढाल या ढलान के अर्थ में प्रयुक्त होता है, लेकिन यहाँ उसका प्रयोग कृपा या द्रवीभूत होने के अर्थ में हुआ है। अतः 'ढरिगौ' ढल गया के स्थान पर समाप्त हो जाना के अर्थ में आया है और ढारत ढुलकाना या लुढकाना के स्थान पर अनुकूल होने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यही स्थिति अरसानि, 'सरसानि', 'निहोरत', 'भोरत आदि शब्दों की भी है। कवि ने इन्हें नवीन अर्थ प्रदान किए हैं। घनानन्द की इसी विशेषता को लक्ष्य कर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि 'भाषा की पूर्व अर्जित शक्ति से ही काम न चलाकर इन्होंने अपनी ओर से नयी शक्ति प्रदान की है। भाषा का ऐसा बेधड़क प्रयोग करने वाला हिन्दी के पुराने कवियों में दूसरा नहीं हुआ। कवि की शब्द प्रयोग और शब्द निर्माण की इस विशेषता को हम आगे लाक्षणिकता के प्रसंग में विशेष रूप से देखेंगे। यहाँ इतना जान लेना पर्याप्त है कि व्याकरण और शब्दावली—दोनों ही दृष्टियों से घनानन्द की भाषा अन्य सभी ब्रजभाषा कवियों की अपेक्षा अधिक शुद्ध और व्यंजक है।

(ग) शब्द शक्तियों की दृष्टि से—व्याकरणिक शुद्धता, भावानुकूल एवं प्रसंगानुकूल शब्दावली के चयन के साथ ही भाषा में निहित शब्द शक्तियों का ज्ञान भी कवि के लिए आवश्यक है। मेरे विचार में ब्रजनाथ द्वारा घनानन्द को 'भाषा प्रवीन' कहना भाषा की अन्यान्य गतिविधियों और उसकी शब्द शक्ति से पूर्ण परिचय का संकेतक है। शब्द जब अपने सामान्य अर्थ बोध से भावाभिव्यक्ति में असमर्थ हो जाते हैं तब कवि के लिए शब्द साधना आवश्यक हो जाती है। भाषा की शक्ति सम्पन्नता पर विचार करते हुए भारतीय साहित्य शास्त्र में शब्द की तीन शक्तियाँ—अभिधा, लक्षणा और व्यंजना शक्ति पर बड़े विस्तार से विचार किया गया है। वाच्यार्थ का बोध करवाने वाली शक्ति अभिधा होती है। वाच्यार्थ के साथ या उसे छोड़कर लक्ष्यार्थ का बोध कराने वाली शक्ति को लक्षणा कहते हैं अभिधा और लक्षणा शब्द शक्तियाँ जब जवाब दे जाती हैं, तब कवि व्यंजना शक्ति का सहारा लेता है।

लक्षणा और व्यंजना के क्षेत्र में मध्ययुग के कवियों ने कम ही प्रवेश किया है। घनानन्द उस युग में अकेले कवि हैं, जिन्होंने इन शक्तियों का पूरा उपयोग किया है। इनकी इस प्रवृत्ति को लक्ष्य कर ही आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि 'भाषा के लक्षक और व्यंजक रूप की सीमा कहाँ तक है इसकी पूरी परख इन्हीं को थी। लक्षणा का विस्तृत मैदान खुला रहने पर भी हिन्दी कवियों ने उसके भीतर बहुत ही कम पैर बढ़ाया। एक घनानन्द ही ऐसे कवि हुए हैं, जिन्होंने इस क्षेत्र में अच्छी दौड़ लगाई है। यहाँ लक्षणा और व्यंजना की तकनीकी बारीकियों और पारिभाषिक सीमाओं की ओर जाने की अपेक्षा कवि की

लाक्षणिक प्रयोग और लाक्षणिक मूर्तिमत्ता सम्बन्धी विशेषताओं पर ही विचार करना हमारे लिए अधिक उपयोगी होगा।

लाक्षणिकता घनानन्द की भाषा की प्रमुख विशेषता है। इसके द्वारा कवि ने एक ओर अनिर्वचनीय भाव स्थितियों और मनोदशाओं की समुचित अभिव्यक्ति की है, तो दूसरी ओर अमूर्त भावों को मूर्त रूप देकर उन्हें संवेदनीय बनाया है। कुछ उदाहरणों द्वारा इस तथ्य को आसानी से समझा जा सकता है

> 'गतिनि तिहारी देखि थकनि मैं चली जाति,
> थिर चर दसा कैसी ढकी उघरति है।
> कल न परति कहूं कल सों परति हाय,
> परनि परी हौं जानि परी न परति है।
> हाय यह पीर प्यारे! कौन सुनै, कासों कहौं,
> सहौ घनआनन्द क्यों अन्दर अरति है।
> भूलनि चिन्हारि दोऊ हैं न हो हमारे तातें,
> बिसरनि रावरी हमैं लै बिसरति है।
>
> —घनआनन्द ग्रंथावली, पृष्ठ १०४/३२६

प्रिय की अतिशय निष्ठुरता को देखकर विषम प्रेम की पीड़ाग्रस्त विरहिणी की आन्तरिक वेदना की सांकेतिक अभिव्यक्ति इस कवित्त में हुई है। अनिर्वचनीयता की अभिव्यक्ति में वाणी वक्रता की किस सीमा तक जा सकती है—इसका अद्भुत प्रमाण इस कवित्त में मिलता है। यह सारी वक्रता विलक्षण लाक्षणिक प्रयोगों के माध्यम से आई है। 'गति' को देखकर थकना अर्थात प्रिय की उपेक्षा की आदत को देखकर विरक्ति हो जाना, थकन में भी चलते जाना अर्थात दुर्दशा में भी जीवन काटते रहना, 'अचल और चल दशा का ढके हुए उघरना' अर्थात अस्पष्ट बने रहना, 'परनि' का न जान पड़ना अर्थात पड़ी हुई विपत्ति का पता न लगना, 'भूलनि और चिन्हारि'—दोनों का साथ न होना अर्थात स्मरण और विस्मरण की भावना से रहित, चेतना शून्य हो जाना, बिसरनि का ले बिसरना अर्थात विस्मरण द्वारा आत्म विस्मृति के गर्त में डाल दिए जाना आदि सभी प्रयोग लक्ष्यार्थ के संकेतक है। लेकिन यहाँ इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि उक्त प्रयोग लक्षणा या व्यंजना के पारिभाषिक दायरे में आबद्ध नहीं है। लक्षणा में वाच्यार्थ बाधित हो सकता है और लक्ष्यार्थ के साथ भी रह सकता है। यहाँ सम्पूर्ण चमत्कार प्राय अभिधामूलक ही है और अभिप्रेत अर्थ की सिद्धि भी बहुत कुछ अभिधा-व्यापार से ही होती है। वस्तुतः अभिधा को अधम काव्य माना गया है लेकिन कुछ काव्य शास्त्रियों ने लक्षणा को हेय और अभिधा को श्रेष्ठ काव्य माना है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तो काव्य को अभिधा व्यापार ही मानते

है। इस दृष्टि स विचार किया जाए तो घनान द के य प्रयोग शब्द शक्तियो के शास्त्रीय दायरे का अतिक्रमण कर एक ओर इनकी उन्मुक्त दृष्टि का परिचय देते है और दूसरी ओर एक अभिनव व्यजना पद्धति का भी सकेत करत ह। घनान द के सम्बध म इस तथ्य को लक्ष्य कर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल न लिखा है 'लाक्षणिक मूर्तिमत्ता और प्रयोग वैचित्र्य की जो छटा इनम दिखाइ पडी, खेद है कि वह फिर पौन दो सौ वष पीछे जाकर आधुनिक काल क उत्तराद्ध म अर्थात वतमान काल की नूतन का व्यवधारा (छायावाद) म ही, अभिव्यजनावाद क प्रभाव स कुछ विदेशी रग लिये प्रकट हुई।'—(हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३२२-२३) इस तथ्य को कुछ अन्य उदाहरणो के माध्यम से अधिक अच्छी तरह् समझा जा सकता है

१ 'राको रहै न दहै घनआनद, बावरी रीझ के हाथन हारिय।'

२ 'वदरा वरस रितु म घिरि क, नितही आखिया उघरी बरस।'

३ 'उजरनि बसी है हमारी आखियानि देखौ, सुवस सुदेस जहा रावरे वसत हौ।

४ 'अकुलनि के पानि परयौ दिन राति।'

५ 'पियराई छाई तन सियराई लौं दहौं।'

६ ह्व हैं सोऊ घरी भाग उघरी अनन्दघन,
सुरस बरस लाल देखिहौ हरी हमैं।'

उक्त उदाहरणो म लाक्षणिकता और प्रयोग-वचित्र्य चमत्कार विधायन की अपेक्षा भाव को तीव्र बनाने मे सहायक सिद्ध हुए हैं। प्रथम उदाहरण म व्यक्त भाव है— रीझ पर किसी का वश नही।' लेकिन इस कथन म 'रीझ की वह तीव्रता नही, जो 'बावरी रीझ के हाथो हारन म है।' रीझ' आसक्ति के अथ म भाववाचक सज्ञा है, लेकिन कवि ने यहा उसे व्यक्ति वाचक सना का रूप देकर उसका सम्मूतन किया है। दूसरे उदाहरण म 'उघरी बरस के स्थान पर खुलकर वरस' से भी काम चलाया जा सकता था। किन्तु 'घिरि कै वरसैं' के सदभ म 'उघरी वरस' से आखो की जो व्याकुलता प्रत्यक्ष हुई है, वह 'खुलकर वरम स सभव नही थी। यहा बादल और आखा म विरोध दिखा कर चमत्कार भी उत्पन्न किया गया है, लेकिन यह चमत्कार मूसलाधार वष्टि का मूत भी करता है। इस प्रकार 'खुल कर वरसना' मुहावरे का यहा नया सस्कार प्रदान किया गया है। तीसरे उदाहरण म 'उजरनि बसी है' के स्थान पर 'हमारे नत्र उजड गए हैं —'उन्हे चारो ओर कुछ नही दिखाई देता' आदि प्रयोग स्थिति की गभीरता और तीव्रता को नही व्यक्त कर पाते। यहा कवि न 'उजरनि शब्द का कर्त्ता रूप म प्रमुखता देकर उजाडपन' को सम्मूर्तित किया है। यही बात चौथे उदाहरण म भी मिलेगी। 'अकुलानि के पानि परयो म जो तीव्रता आइ है वह 'प्राण अत्य

थिक व्याकुल हो गए हं' में कभी नही आ पाती। व्याकुलता भाववाचक सज्ञा है, लेकिन इस वहुवचन म प्रयुक्त कर जातिवाचक सज्ञा का रूप दिया गया है। इसी प्रकार 'रीझ' से रीझनि, लाज से लाजनि, व्यथा मे व्यथानि, सुदरता से सुदरतानि आदि प्रयोगा द्वारा कवि न अधिकाश स्थला पर सूक्ष्म भावा का सघन करन का सफल प्रयास किया है। पाँचवें उदाहरण म 'सियराई ला दहा' विरोध मूलक विलक्षण प्रयोग है जा विरहिणी की विपम व्यथा को सकेतित करता है। इस प्रकार क लाक्षणिक प्रयाग प्रसाद आदि छायावादी कविया म ही देखन का मिलत ह

'शीतल ज्वाला जलती है, इधन होता दग जल का।
यह व्यथ स्वास चल चलकर, करती है काम अनल का॥

इस प्रकार के अनक प्रयोग घनानन्द न भी किए ह। छठवें उदाहरण म 'खुले भाग्य वाली घडी' का विशेषण विपयय की सना दी जा सकती है। वस्तुत घडी (मुहूत) खुले भाग्य वाली नही होती, वरन् आल्मी खुले भाग्य वाला होता है। क्योकि उसी का भाग्य खुलता है। यहा शुभ मुहूत के लिए 'खुले भाग्य वाली घडी' का प्रयोग कर कवि ने अपने अपूव अभिव्यजना-कौशल का परिचय दिया है। 'देखि हौ हरी' के सदभ मे 'खुले भाग्यवाली घडी' के प्रयोग को एक विशेष साथकता प्राप्त हुई है। घनानन्द का एक भी कवित्त सवैया ऐसा कठिनाई से मिलेगा, जिसम लाक्षणिक मूर्तिमत्ता या प्रयाग-वचिन्य का सहारा न लिया गया हो।

(घ) मुहावरे और लोकोक्तिया—काव्य भापा जब जीवन की भापा या सामान्य वाल चाल की भापा म पूरी तरह अलग हा जाती है तब चाहे उसे जितना भी अलकृत किया जाए, उसम जीवन का सहज स्पदन नहीं आ पाता। घनानन्द की भापा भी यद्यपि पूणत काव्यात्मक और अलकृत है, फिर भी मुहावरा और लोकोक्तियों क प्रयाग द्वारा कवि न उसे जीवन क निकट लान का सफल प्रयास किया है।

मुहावरे और लाकोक्तियाँ जनजीवन म चिरकाल से चलत आ रह भावपूण एव चमत्कार पूण प्रयोग हाते हैं। इनम जीवनगत अनुभवा का अत्यन्त सक्षेप म व्यक्त करन की अदभुत क्षमता हाती है। काव्य म स्थान प्राप्त कर य जहाँ एक आर उसम स्वाभाविकता और सजीवता का सचार करत ह वहीं दूसरी ओर भापा की अभिव्यक्ति क्षमता म अपूव वद्धि करत हैं। मुहावरा का निमाण भी लक्षणा के सहार होता है। किन्तु लाक समाज म बार-बार प्रयुक्त हान क कारण व एक निश्चित अथ म रूढ हो जाते ह। लाकोक्तियाँ पूण वाक्य या कथन होती हैं जो अपन अन्दर एक पूरा अनुभव समेट लिय रहती ह। भापा के अन्दर इनका प्रयोग वाक्य स अलग उदाहरण या दृष्टान्त के रूप म किया जाता है। इनके स्वरूप म

किसी भी प्रकार का परिवर्तन किए बिना ज्यों का त्यों प्रस्तुत किया जाता है। जब बिना किसी परिवर्तन के काव्य में इन्हें छन्दबद्ध करना कठिन होता है। वाक्य या छन्द की आवश्यकता के अनुसार मुहावरों के स्वरूप को आसानी से परिवर्तित किया जा सकता है। अतः इनका काव्य में प्रयोग आसान होता है। यद्यपि घनानन्द का झुकाव लोकोक्तियों की अपेक्षा मुहावरों की ओर अधिक है, फिर भी इन्होंने कुछ लोकोक्तियों का अत्यंत सार्थक प्रयोग अपने काव्य में किया है। कुछ उदाहरणों द्वारा इसे आसानी से समझा जा सकता है

> १ 'रनि दिन धन को न लगे कहूँ पैंड, भाग
> आपने ही एसे दाप काहि धों लगाइय।'
> २ सुनी है के नाहीं यह प्रगट कहावति जू
> काहू कलपाइहै सु कसें कल पाय है।'

संदर्भ साम्य और दृष्टान्त के रूप में प्रयुक्त होने के कारण लोकोक्तियाँ सामान्य कथन में घुलमिल जाती हैं। साम्य की पूर्ण सिद्धि हो जाने पर तो ये अलंकार की कोटि में आ जाती हैं। कुछ लोकोक्तियों की छाया का उपयोग भी घनानन्द ने अपने काव्य में किए हैं

> 'हित के हितुनि कहो काहू पाई पति रे।'
> 'मान मेरे जियरा बनी को कसो मोल हैं।

लोकोक्तियों की अपेक्षा मुहावरों का उपयोग काव्य में अधिक आसानी से हो सकता है। अपनी विशेष लाक्षणिकता के कारण इनसे भाषा की अभिव्यक्ति क्षमता में अपूर्व वृद्धि होती है। घनानन्द के विरले ही कवित्त सवैये ऐसे मिलेंगे जिनमें किसी मुहावरे का प्रयोग न हुआ हो। कुछ उदाहरणों द्वारा कवि के एतद् विषयक वैशिष्ट्य का उद्घाटन आसानी से हो जाएगा

> पहिले अपनाय सुजान सनेह सों, क्यों फिर तेह कै तोरिये जू।
> निरधार अधार दै धार मझार, दई! गहि बाँह न बोरिये जू।
> घनआनन्द आपने चातिक को गुन बाँधि लै मोह न छोरिये जू।
> रस प्याय कै ज्याय बढ़ाय कै आस बिसास में यों विष घोरिये जू॥

इसमें 'गहि बाँह' (बाँह थामना) सहारा देने के अर्थ में एक मुहावरा है किन्तु 'गहि बाँह न बोरियै' (बाँह थाम कर डुबाना) सहारा देकर असमय हाथ खींच लेना एक अलग मुहावरा बन जाता है। ये दोनों ही मुहावरे 'निरधार आधार दै धार मझार' के पूरे संदर्भ में इस तरह रख गए हैं कि इनकी अभिव्यक्ति क्षमता में और अधिक वृद्धि हो जाती है। किसी निराधार को सहारा देकर मझधार में

ले जाना और फिर वहां बांह पकडकर (बलपूर्वक) डुबा देना अनुभयनिष्ठ प्रेम की मूल प्रकृति का उद्घाटन करता है। यही बात 'बिसवास म यों विष घोरियै' (विश्वास म विष घोलना) अर्थात् विश्वासघात करना म भी है। रस (आनंद) पिलाकर जिलान और आशा बढान के संदभ म यह मुहावरा और अधिक व्यंजक बन गया है। इस सम्बन्ध म दूसरा उदाहरण है

> 'घनआनंद जान न कान कर, इत के हित की कित कोऊ कहै।
> उत ऊतर पायँ लगी मेहदी सु कहा लगि धीरज हाथ रहै॥

यहां कान करना (ध्यान देना), पाव मे मेहदी लगना (चलन म असमथ होना), *हाथ रहना (वश म रहना) आदि मुहावरा का बडा ही स्वाभाविक प्रयोग* हुआ है। घनानंद के मुहावरा प्रयोग की यह मुख्य विशेषता है कि वे काव्य-भाषा म पूरी तरह से रल मिल गए है। उन्ह अलग करके वहाँ पहचान पाना कठिन हो गया है। वस्तुत ये मुहावरे कवि की लाक्षणिकता की प्रवत्ति के अभिन्न अग बन गए ह।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि *घनानंद की भाषा व्याकरण सम्मत भावा*नुकूल शब्द-योजना से पूण, शब्दशक्तियो, लोकोक्ति मुहावरो और लाक्षणिकता स युक्त अत्यन्त प्राणवान साहित्यिक व्रजभाषा है। आवश्यकतानुसार जहा एक ओर यह लाक्षणिक प्रयोगो और प्रयोगवैचित्र्य का सहारा लेकर वक्र पथगामिनी बनी है, वहीं दूसरी ओर मानसिक द्रवण के अत्यन्त मार्मिक क्षणों म कोमल-कात पदावली स सयुक्त होकर *अत्यन्त सीधे सहज माग पर भी प्रवाहित हुई है।* सरल एव प्रवाहयुक्त भाषा का एक उदाहरण है

> घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ, जिहि भातिन हौ दुख मूल सहा।
> नहि आवनि औधि न रावरी आस, इते पर एक सी बाट चहा।
> यह देखि अकारन मेरी दसा कोउ बूझ तौ ऊतर कौन कहा।
> *जिय नकु विचारि क देहु बताय, हहा! प्रिय दूरि तैं पायँ गहौं॥*

शिल्प सम्बन्धी कुछ निजी विशेषताएँ

हमने इस तथ्य का पहले ही देख लिया है कि घनानन्द की काव्यभाषा भावाभिव्यक्ति म इतनी समथ है कि उन्ह अप्रस्तुत विधान का बहुत कम सहारा लेना पडा है। वस तो गिनाने के लिए इनकी रचनाओं म काव्यशास्त्र के अन्तगत परिगणित सभी अलकारो को ढूढा जा सकता है। किन्तु वास्तविकता यह है कि इन्होंने साम्य पर आधारित साम्यमूलक *अप्रस्तुत विधान का बहुत ही कम सहारा लिया है।* हाँ एकनिष्ठ प्रेम की विषम स्थिति का चित्रित करने के लिए कवि ने वैषम्यमूलक अलकारो—विशेषकर विरोधाभास का पर्याप्त सहारा लिया है। विरोधाभास का

इनकी निजी विशेषता माना जा सकता है। घनानन्द के काव्य म विरोध की इस प्रवत्ति का लक्ष्य करके आचाय विश्वनाथ प्रसाद मिश्र न लिखा है 'विरोधाभास के अधिक प्रयोग से घनानन्द की सारी रचना भरी पडी है। साहसपूर्वक कहा जा सकता है कि जिस पुस्तक म कहीं भी यह प्रवत्ति न दिखाइ दे, उसे बेखटके घनानन्द की कृति से पथक किया जा सकता है और जहा यह प्रवत्ति दिखाइ द उसे नि सकोच इनकी कृति घोषित किया जा सकता है।' वस्तुत इस विश्वास के आधार पर ही मिश्र जी न घनानन्द ग्रथावली का सपादन किया है। कवित्त सवया से लेकर पदावली और अयान्य भक्ति विषयक उनकी रचनाओ म हम समान रूप स इस तथ्य का आसानी से देख सकत ह।

यहा यह तथ्य विशेष रूप स उल्लेखनीय है कि घनानन्द की रचनाओ म लक्षणबद्ध विरोधाभास मात्र न होकर अधिकाशत साथक और तात्विक विरोध की स्थिति सामन आती है। इसके मूल म उनके जीवन का एकतरफा और विषम प्रेम है। वहा प्रेमी और प्रिय के मध्य एक तात्विक और वास्तविक विरोध है। इसीलिए काव्यगत विरोध भी विरोध का आभास मात्र न होकर प्राय तात्विक विरोध के रूप म ही आया है। इसे कुछ उदाहरणो के माध्यम से आसानी स समझा जा सकता है

१ हाय सनेही ! सनेह सो रूखें, रुखाई सो ह्वै चिकने अति मोहौ।
आपुन पौ जग जापहु तें करि हाते हुतौ घनआनँद को हौ।'

२ कौन घरी बिछुरे हौ सुजान जु एक घरी मन त न बिछाहौ।
मोह की बात तिहारी अबूझ, पै मो हिय की तो अमाहियौ मोहौ॥'

पहले उदाहरण म 'सनेह सो रूखे' होना (स्नेह=प्रेम, तल, रूख=रहित, रुक्ष), रुखाइ=बरुखी, रूक्षता, चिकन=पूर्ण, स्निग्ध, तथा अपनपन और अपन से दूर करके मारन म विरोध है। लेकिन अधिकाशत श्लेषमूलक होन के कारण यहा विरोध का आभास मात्र न होकर सवत्र तात्विक विरोध दिखाई दता है। दूसरे उदाहरण म 'बिछुड कर भी एक क्षण के लिए मन मे न 'बिछुडना और 'अमाही होकर भी मोहना म तात्विक विरोध है। वस्तुत इस प्रकार के तात्विक विरोध द्वारा कवि न प्रेमी और प्रिय की विरोधी वत्तियो को स्वर दिया है, जो वषम्य मूलक होत हुए भी प्रेमी पक्ष स एकनिष्ठता की अनिवायता को सकेतित करता है। इसलिए इसे विरोधाभास अलकार न मान कर विरोध वचित्र्य नाम देना अधिक सगत है। इसके लिए घनानन्द न कहीं लाक्षणिकता की सहायता ली है तो कहीं उक्ति-वचित्र्य और प्रयोग-वचित्र्य की। प्रयोग-वचित्र्य के लिए यहाँ कुछ उदाहरण दशनीय हैं

'दुरि आप नय हू इकोसैं मिलो घनआनँद या अनखानि छिजौं।
उर डीठि के नीठि न दखि सकौ सु अनाखियैं रीझि प रीझि खिजौं।'

'इकौसें' (अकेले), 'अनखानि छिजौ (झुँझलाहट म क्षीण होना) 'रीझि पै रीझि खिजौं' (रीझ पर रीझना-खीझना) आदि प्रयाग मात्र वचि-य प्रदशन के लिए न होकर प्रेमी की अनिवचनीय स्थिति को प्रकट करत है। विलक्षण प्रयोग की दष्टि स कुछ अ-य उदाहरण भी लिय जा सकत ह

१ 'अरसानि गही उहि बानि कछू, सरमानि मा आनि निहोरत हे।'

२ 'मग हेरत दीठि हिराय गयी, जय ते तुम आवनि औधि वदी।
बरसौं कितहू घनआन-द प्यार, पै बाढति है इत सोच-नदी।
हियरा अति औटि उदग की आँचनि च्वावत आसुनि मन मदी।
कव आयहौ औसर जानि सुजान बहीर लौं बसि तौ जाति लदी॥

प्रथम उदाहरण मे आदत (बानि) का आलस्य ग्रहण करना विलक्षण है। आलस्य आदमी करता है आदत नहीं। लेकिन उस आदत (उहि बानि) का आलस्य करना, जो पहले आलसी नहीं थी—इससे प्रिय की जिस निष्ठुरता की व्यजना हुई है, वह प्रिय के आलस्य ग्रहण से नहीं हो सकती थी। 'निहोरा' शब्द व्रजभाषा म कृतज्ञता के अथ म प्रयुक्त होता है, जिससे निहोरत' क्रिया का निर्माण कवि का मौलिक प्रयास है। दूसर उदाहरण म 'दृष्टि का खा जाना (दीठि हिराय गइ) एक मुहावरा है, लकिन 'मग हेरत (माग देखत या जोहत) के स-दभ म हल्के विरोध की छाया से युक्त होन के कारण जय म एक विशेष प्रकार की तीव्रता आ गई है। रास्ता देखत हुए दृष्टि का खो जाना अर्थात दखन के प्रयास म स्वय खा जाना, जहा एक ओर चमत्कार की सष्टि करता है, वहीं दूसरी ओर विरहिणी की गभीर स्थिति को भी सकेतित करता है। दूसरी पक्ति म बादला का कहीं बरसना और नदी का कहीं अयत्र बढना म असगति है—कारण कहीं और काय कहीं मे असगतिमूलक विरोध है। इसी प्रकार एक तरफ सोच नदी का बढना और दूसरी तरफ उ-दग की आच म उबलना म भी विरोध का आभास है। तीसरी पक्ति म कामदेव द्वारा हृदय को उद्वेग की आंच मे उबाल कर आसू के रूप म मदिरा टपकाना, एक विचित्र व्यापार है, जो काम -यथा की ओर सूक्ष्म कि-तु प्रभावपूण सकेत है। 'बहीर' (युद्ध के बाद का बचा हुआ सैनिक साज सामान) 'लौ बैसि (आयु) के लदन म केवल उपमा का चमत्कार न होकर विरहिणी की हृदय द्रावक हताशा को भी वाणी मिली है। इस प्रकार यहा मुहावरे लाक्षणिक प्रयोग, असगति, रूपक, उपमादि अलकार, विरोध वचि-य, प्रयोग वैचि-य आदि एक साथ मिलकर विरहिणी की गम्भीर मनोदशा की सफल अभिव्यक्ति करते है। अ-तिम पक्ति—'कब आयहौ औसर जानि सुजान, बहीर लौ बसि तो जाति लदी'—म विरहिणी की कातर पुकार मूर्तिमान हो गई है।

इस प्रकार हम देखते है कि भाषा शैली के सम्बन्ध म भी घनानन्द न रीति बद्धता की लकीर नही पीटी है। उनकी दृष्टि शिल्प सम्बन्धी नई सभावनाओ की ओर भी गई है। इस सम्बन्ध म आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ठीक ही कहा है कि 'यह निस्सकोच कहा जा सकता है कि भाषा पर जैसा अचूक अधिकार इनका था वैसा और किसी कवि का नही। भाषा मानो इनके हृदय के साथ जुडकर ऐसी वशवर्तिनी हो गई थी कि य उसे अपनी अनूठी भावभगी के साथ साथ जिस रूप म चाहते थे, उस रूप म मोड सकते थे। इनके हृदय का योग पाकर भाषा को नूतन गतिविधि का अभ्यास हुआ और वह पहले स कही अधिक बलवती दिखाई पडी।

अपनी भावनाओ क अनूठे रूप रग की व्यजना के लिए भाषा का ऐसा बेधडक प्रयोग करन वाला हिन्दी के पुरान कविया म दूसरा नही हुआ। (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ३२२)। कहना न होगा कि भाषा की इस शक्ति के पीछे उनके लाक्षणिक प्रयोग विरोध वचित्र्य, प्रयोग वैचित्र्य आदि का महत्त्वपूर्ण योगदान है। प्रेम भावना का जिस सूक्ष्म एव अछूते माग पर घनानन्द ने विचरण कराया है, वह हिन्दी के पुरान कविया के लिए तो अपरिचित रहा है, लकिन आगे आने वाल कविया को उससे प्रेरणा मिल सकती है।

११ उपसंहार

अपने युग की उपज होने के कारण घनानन्द के काव्य जगत का दायरा युगीन सीमाओं से परिसीमित अवश्य है, लेकिन शृंगार के संयोग वियोग की परम्परागत लक्ष्मण रेखा का अतिक्रमण करने के कारण वह आज भी हमारे लिए प्रेरणा का स्रोत बन सकता है। प्रेरणा का यह बिंदु कवि का स्वानुभूत सत्य है। लेकिन स्वानुभूत सत्य तभी महत्वपूर्ण बनता है जब अन्त प्रेरणा बाह्य प्रभावों के साथ द्वन्द्वरत होकर आत्म परिष्कार या आत्म विस्तार की ओर उन्मुख होती है। इस दृष्टि से घनानन्द का द्वन्द्व त्रिकोणात्मक है। इसका एक छोर उनकी निजी जीवन की स्थिति-परिस्थिति में है दूसरा तत्कालीन परम्परानिष्ठ रूढिग्रस्त दबावों में तो तीसरा छोर विदेशी कही जाने वाली फारसी काव्य-परम्परा के प्रभावों में। अपनी जीवनगत स्थितियों और उसके अनुभवों की सच्ची अभिव्यक्ति के लिए तत्कालीन जीवनगत और काव्यगत रूढियों का अतिक्रमण घनानन्द का आवश्यक प्रतीत हुआ। इसके लिए फारसी भावधारा और काव्य पद्धति उन्हें अपने अनुकूल लगी। अतः इसे सीधे फारसी प्रभाव कहकर टाला नहीं जा सकता। फारसी प्रभाव कवि के लिए बाहरी प्रभाव हो सकता है, लेकिन वह अपनी जीवनगत परिस्थितियों के माध्यम से उसके अन्तर्जगत का अंग बन आन्तरिक प्रेरणा के साथ घुल मिल गया है। कोई भी बाहरी प्रभाव जब आन्तरिक संवेदनात्मक उद्देश्यों की पूर्ति करते हुए निजी व्यक्तित्व का अंग बन जाता है तब वह बाहरी नहीं रह जाता। घनानन्द के सन्दर्भ में फारसी काव्यधारा के प्रभाव की भी यही स्थिति है। कवि ने उसे आत्मसात कर नितान्त आन्तरिक बना लिया है। फलस्वरूप वह देशी परिवेश में एक अभिनव रूप ग्रहण करता है। बाह्य प्रभाव ग्रहण की यह एक अत्यन्त जीवन्त और स्वस्थ पद्धति है, जिससे आज भी हम प्रेरणा ले सकते हैं।

सूफियों के 'प्रेम की पीर' और फारसी भावधारा में स्वीकृत प्रेम-पद्धति के प्रभाव के सन्दर्भ में यदि किंचित विस्तार से विचार करें तो घनानन्द को हम एक विशिष्ट व्यक्तित्व सम्पन्न कवि के रूप में पाएँगे। जहाँ एक ओर इस भावधारा के विषय एवं वस्तुगत तत्वों को आत्मसात कर इन्होंने आत्मानुभूति का अंग बनाया, वहीं दूसरी ओर इसके मुहावरेदार लाक्षणिक काव्य शिल्प को ब्रजभाषा में ढाल कर एक नया संस्कार प्रदान किया। इसीलिए इनके प्रेम निरूपण और उसकी अतिशय भावमूलक अभिव्यक्ति में हम कहीं भी कृत्रिमता नहीं दिखाई देती। इसके

साथ ही घनानन्द द्वारा गृहीत भावों, उनकी अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त भाषा, शब्दावली, मुहावरों आदि पर भी फारसी प्रभाव कहीं आरोपित नहीं दिखाई देता। अपितु इस प्रभाव के माध्यम से जहाँ कवि ने अपनी आन्तरिक आवश्यकता की पूर्ति की है वहीं ब्रजभाषा की शक्ति में भी वृद्धि की है।

किसी कवि कलाकार का वास्तविक महत्व उसके युग परिवेश के सन्दर्भ में ही आँका जा सकता है। इस दृष्टि से विरल ही लोग होते हैं, जो अपनी अलग पहचान बना पाते हैं। घनानन्द ऐसे ही कवि थे, जिन्होंने युगीन रूढ़िग्रस्त परिपाटी का त्याग कर अपनी एक अलग पहचान बनाई है। रीतिकालीन व्यक्तित्व विहीन काव्य रचना के वातावरण में अपने निजी व्यक्तित्व को काव्य प्रेरणा का स्रोत बनाकर इन्होंने अपने साहस का परिचय दिया है। लेकिन इस साहस का मूल्य भी इन्हें चुकाना पड़ा। जीवन क्षेत्र की भाँति ही काव्य क्षेत्र में भी इनकी उपेक्षा हुई। सुजान वेश्या से प्रेम के कारण राजदरबार से निष्कासित होना पड़ा और काव्य क्षेत्र में फारसी की उक्तियाँ चुराने वाला 'किसी तुरुकनी का बन्दा' तथा किसी 'तुरुक राजा' को रिझाने वाला कहकर निन्दित किया गया। यह एक वास्तविकता है कि युग की प्रमुख भावधारा के मध्य विक्षेप उत्पन्न कर अपनी नयी पहचान बनाने वाले कवि कलाकार अपने युग द्वारा सदा से उपेक्षित होते आए हैं। एक ह्रासग्रस्त सामंतीय समाज में वेश्या उपभोग की सामग्री होती है। उससे प्रेम या वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करना सामाजिक दृष्टि से निषिद्ध माना जाता है। घनानन्द ने इस विधि निषेध का उल्लंघन किया। अतः वे राजकीय कोप के भाजन ही नहीं, वरन सामाजिक उपेक्षा के भी पात्र बने। अपने युग में ब्रजनाथ और महात्मा हितवृन्दावन दास के अतिरिक्त किसी ने भी इस कवि को महत्व नहीं दिया। जब कि बिहारी सतसई' की सैकड़ों टीकाएँ लिखी गईं, केशव, देव, मतिराम, पद्माकर आदि की रचनाओं पर सैकड़ों भित्ति चित्र बने। आधुनिक युग में आकर भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, जगन्नाथदास रत्नाकर, चन्द्रकुँवर आदि ने घनानन्द के महत्व को समझा और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' ग्रन्थ में इनके मूल्य को सही ढंग से आँका। लेकिन फिर भी साहित्येतिहास की स्वीकृत धारा में इनका स्थान निर्धारण नहीं हो पाया। आगे चलकर इनके साथ आलम, ठाकुर, बोधा आदि कवियों को जोड़ कर रीतिमुक्त स्वच्छन्द काव्यधारा के रूप में इनको ऐतिहासिक प्रतिष्ठा मिली। वस्तुतः रीतिकाल के अन्तर्गत रीतिमुक्त काव्यधारा की अलग पहचान इस कवि के बिना सम्भव नहीं थी। घनानन्द का यह बहुत बड़ा ऐतिहासिक महत्व है।

घनानन्द मूलतः वेदना के कवि रहे हैं। वेदना ही उनके जीवन का वास्तविक सत्य थी, जिसे अपने काव्य में इन्होंने वाणी प्रदान की है। लेकिन वेदना एक ऐसा भाव है जिसकी सच्ची अनुभूति स्वयं मर्माहत होने पर ही सम्भव है। केवल काव

चातुर्य या वाणी विलास के बल पर वेदना के महत्व को नहीं प्रकट किया जा सकता

'मरम भिदे न जौ लौं, मरम न पावे तौ लौं
मरमहि भेदे मन मुरति घेघाइरा।
प्रेम आगि जागे लागे घर घनआनन्द को,
रोदवा न आवे तौ पै गादवा हू रोइरा॥'

'प्रेमाग्नि लगने पर ही आनन्द की झड़ी लगती है। नित्य रोना नहीं आता उसके हर्षोल्लासपूर्ण गान भी रुदन जैसे बन जाते हैं। इससे स्पष्ट है कि कवि विषाद में ही उत्तम काव्य की सृष्टि मानता है। लेकिन विषाद की वास्तविक अनुभूति के बिना, वह केवल अवधारणा बनकर रह जाता है। हम रीतिबद्ध काव्य धारा में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि वहाँ प्रेमजन्य विषाद केवल अवधारणा बन कर रह गया है। अपनी सीमा में व्यवहार की भूमि में उतरकर कोई भी अवधारणा वायवी बन जाती है और तब उसमें से जीवन के वास्तविक स्पन्दन गायब हो जाते है। आधुनिक युग के छायावादी काव्य में भी प्रेमज व विषाद का कुछ ऐसा ही स्वरूप मिलता है। इस काव्यधारा के कवियों में भी विषाद के प्रति एक ललक दिखाई देती है जिससे प्रेरित होकर प्रसाद और पन्त ने लिखा है

'जो घनीभूत पीड़ा थी, मस्तक में स्मृति सी छाई।
दुर्दिन में आँसू बनकर, वह आज बरसने आई॥ —प्रसाद
वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान।
उमड़ कर आँखों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान॥ —पन्त

लेकिन इस घनीभूत पीड़ा' या 'आह का ठोस आधार हम प्रसाद और पंत के जीवन में नहीं प्राप्त होता। फलस्वरूप हम प्रसाद के आँसू और पंत की आह में वास्तविक वेदना या विषाद नहीं, वरन् विषाद की विलासपूर्ण कल्पना के दर्शन होते हैं। सच्ची वेदना की भावना छायावाद में है ही नहीं, जैसी कि रीतिमुक्त कवि घनानन्द, ठाकुर बोधा या कबीर, सूर, मीरा आदि भक्त कवियों में मिल जाती है। यह सही है कि जिए जाने वाले या भोग गए जीवन की अविकल अनुगूंज काव्य में नहीं होती। कवि कल्पना के सहारे उस भोगे गए जीवन की पुनरचना करता है। इस कल्पना के द्वारा जहाँ एक ओर वह दूसरों के अनुभवों को अपना बनाता है वहीं दूसरी ओर अपने अनुभवों में दूसरों को सहभागी बनाता है। घनानन्द में भी इस प्रकार की विधायक कल्पना का संयोग है लेकिन यह कल्पना जीवन की पुख्ता नींव पर आधारित है। इसलिए इनके काव्य में विरही जीवन की वास्तविक व्यथा मिलती है और इसीलिए वह हमें आज भी द्रवीभूत करती है। यह स्थिति

देव, मतिराम, पद्माकर आदि रीतिबद्ध कवियों में कठिनाई से मिलेगी। इन कवियों ने प्रेमजन्य व्यथा की अभिव्यक्ति में अपनी अनुभवशून्यता को वाग्जाल के माध्यम से ढँकने का प्रयास किया है। इसकी ओर संकेत करते हुए घनानन्द ने स्वयं लिखा है

'बात के देस तें दूरि परे, जडता नियरे सियरे हिय दाहै।
चित्र की आँखिन लीन विचित्र, महारस रूप सवाद सराहै।
नेह कथै सठ नीर मथै हठ कै कठ प्रेम को नेम निबाहै।
क्यों घनआनँद भीजैं सुजाननि यों अमिले मिलबो फिरि चाहैं॥

वाणी के वास्तविक मर्म से अनभिज्ञ जड और अनुभूति शून्य (सियरे) ठंडे हृदय वाले इन कवियों का काव्य मन में कुढ़न पैदा करता है। इन्होंने चित्र में अंकित (झूठी) आँखों से महारस (प्रेम) के स्वाद की सराहना की है। इसलिए इनका प्रेम कथन किसी दुष्ट द्वारा जल मथन की तरह निरर्थक या हठपूर्वक कठ प्रेम के नियम के निर्वाह जैसा है। इस प्रकार के कवियों से घनानन्द ने अपने को बिल्कुल अलग बनाया है। वस्तुतः अपने युग जीवन और युगीन काव्य धारा के प्रति इस प्रकार की प्रतिक्रियाएँ कवि के आन्तरिक द्वन्द्व और उसकी जीवन्तता को प्रमाणित करती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि घनानन्द का अपने युग और आज के संदर्भ में भी एक ऐतिहासिक महत्व है। यद्यपि यह महत्व साहित्येतिहास में नई दिशा का प्रवर्तक बनने की क्षमता चाहे भले ही न रखता हो, फिर भी एक सशक्त भाव धारा अथवा काव्य धारा की जगतिकता के विरुद्ध अपने आपको स्थापित करने के प्रयास के कारण हमारे लिए नई दिशा का संकेतक बनने की क्षमता अवश्य रखता है। वह संकेत है अपने युग की रूढ, गलित एवं अगतिशील परम्पराओं का भंजन।

□ □

साहित्य अकादेमी भारतीय-साहित्य के विकास के लिए काय करने वाली राष्ट्रीय महत्त्व की स्वायत्त सस्था है, जिसकी स्थापना भारत सरकार ने १९५४ मे की थी। इसकी नीतियाँ एक ८२-सदस्यीय परिषद द्वारा निर्धारित की जाती हैं जिसमे विभिन्न भारतीय भाषाओ, राज्यो और विश्व-विद्यालयो के प्रतिनिधि होते हैं।

साहित्य अकादेमी का प्रमुख उद्देश्य है—ऊँचे साहित्यिक प्रतिमान कायम करना, विभिन्न भारतीय भाषाओ मे होने वाले साहित्यिक कार्यों को अग्रसर करना और उनका समन्वय करना, तथा उनके माध्यम से देश की सास्कृतिक एकता का उन्नयन करना।

यद्यपि भारतीय साहित्य एक है, तथापि एक भाषा के लेखक और पाठक अपने ही देश की अन्य पडोसी भाषाओ की गतिविधियो से प्राय अनभिज्ञ ही जान पडते हैं। भारतीय पाठक भाषा और लिपि की दीवारो को लाँघकर एक-दूसरे से अधिकाधिक परिचित होकर देश की साहित्यिक विरासत की अपार विविधता और अनेकरूपता का और अधिक रसास्वादन कर सकें, इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए साहित्य अकादेमी ने एक विस्तृत अनुवाद-प्रकाशन योजना हाथ मे ली है। इस योजना के अन्तगत अब तक जो ग्रथ प्रकाशित हो चुके हैं, उनकी वृहद सूची साहित्य अकादेमी के विक्रय विभाग से नि शुल्क प्राप्त की जा सकती है।